

## अनुक्रम

आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र में अभियुक्तों के मानवाधिकार	7
• दिनेश मोहन चड्ढा	
महिला हिंसा----विकास में एक रोड़ा	18
• अरविंद कुमार चौबे	
आम आदमी पुलिस से मदद तो चाहता है किंतु स्वयं पुलिस की मदद नहीं करना चाहता----	23
• डा. आर.के. सक्सैना, डा. गीता सक्सैना	
पुलिस कानून और न्याय	29
• डा. दशमंत दास पटेल, श्रीमती राजमति पटेल	
“नारी के विरुद्ध अपराध एक सटीक अवलोकन”	36
• श्री मुकेश कुमार	
“पुलिस थाने और पुलिस का व्यवहार कितना सच कितना झूठ”	44
• अरुण कपूर	
कारागार-सुधारात्मक प्रणाली	48
• सुबोध मेहरोत्रा	
“पुलिस संगठनों की महत्ता बनाम मानवाधिकार संगठन”	53
• रेखा रानी कपूर	
निदेशक (अनु. एवं वि.) की कलम से	62
कारागार सुधार एवं सुधारात्मक प्रशासन पर राष्ट्रीय नीति	
‘पुलिस विज्ञान’ में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।	

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का अक्टूबर-दिसंबर, 2007 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रैस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिस-कर्मों के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार पुलिस-कर्मियों के लिए **आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र में अभियुक्तों के मानवाधिकार, महिला हिंसा----विकास में एक रोड़ा, आम आदमी पुलिस से मदद तो चाहता है किंतु स्वयं पुलिस की मदद नहीं करना चाहता-----, पुलिस कानून और न्याय, “नारी के विरुद्ध अपराध एक सटीक अवलोकन”, “पुलिस थाने और पुलिस का व्यवहार कितना सच कितना झूठ”, कारागार-सुधारात्मक प्रणाली, “पुलिस संगठनों की महत्ता बनाम मानवाधिकार संगठन”** से संबंधित लेख भी हैं।

पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा  
संपादक



# आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र में अभियुक्तों के मानवाधिकार

दिनेश मोहन चड्ढा

विधि प्रवक्ता,

121-ए, जनकपुरी सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)

*अभियुक्त होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसे समाज द्वारा बिल्कुल उपेक्षित या निःसहाय कर दिया जाए। आखिरकार वह भी एक मानव है और हमारे ही समाज की उत्पत्ति है।*

प्रायः प्रत्येक राज्य के शासनतंत्र का यह सर्वप्रमुख दायित्व होता है कि वह सदैव अपने नागरिकों के लिए एक अपराध एवं भय मुक्त वातावरण बनाए रखे तथा इस बात के सर्वोत्तम प्रयास करे कि जो व्यक्ति समाज के भीतर रहकर साशय विधि का अतिलंघन करते हैं और तदनुसार कानून व्यवस्था, लोक प्रशांति व सामाजिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बन जाते हैं वे किसी भी अवस्था में अदण्डित न रह जाएं। निःसंदेह भारत वर्ष में भी यही व्यवस्था पुरातनकाल से निरंतर अपनाई जाती रही है जिसके स्पष्ट दर्शन हमें आधुनिक भारतीय अपराध शास्त्र के अंतर्गत भी प्राप्त होता है चाहे भले ही मानव समुदाय पर तब से आज तक किसी भी वंश, जाति, संप्रदाय या प्रणाली का शासन क्यों न रहा हो।

लेकिन इस संबंध में यह बात विशेष रूप से विचारणीय है कि प्राचीन समय में जिस प्रकार की आपराधिक विधि भारतवर्ष में प्रचलित थी तथा अभियुक्तों को दंड देने के लिए जो सिद्धांत एवं प्रक्रियाएं तब अपनाई जाती थी, उनमें से अधिकांशतः आज के

इस नवीन युग में असभ्य, अयुक्तियुक्त व अमानवीय प्रतीत होने के कारण धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। यदि इस विषयक यह कहा जाए कि वर्तमान विकासशील समाज ने कई अर्थों में पुरातन आपराधिक विधि के मूलभूत स्वरूप एवं पहचान को ही पूर्णतया नकार दिया है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्पष्टतया इस व्यापक परिवर्तन चक्र के लिए एक या दो नहीं अपितु अनेक कारण उत्तरदायी ठहराए जा सकते हैं। वस्तुतः इस श्रृंखला में पुरातन आपराधिक विधि का सर्वाधिक दुखदाई पक्ष यह था कि इसके अधीन किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को उसका दोष अंतिम रूप से साबित हुए बिना ही प्रथम दृष्टया पापी की संज्ञा दे दी जाती थी और तत्पश्चात इसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर उस व्यक्ति के प्रति संपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया के दौरान कोई भी मानवोचित व्यवहार नहीं अपनाया जाता था और न ही उसे अपना बचाव पक्ष सम्यक ढंग से प्रस्तुत करने का कोई युक्तियुक्त अवसर ही मिल पाता था।

इसके ऊपर विडंबना यह थी कि उक्त व्यवस्था में, आपराधिक न्याय प्रशासन के समूचे तंत्र को बिना किसी तर्कसंगत आधार पर अत्याधिक विपुल व निरंकुश शक्तियों से अनुपूरित कर दिया गया था जिसके माध्यम से उन्हें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षतया इस बात की पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त हो गई थी कि वे जब चाहें तब विधि की आड़ में आरोपी व्यक्ति के मूलभूत मानवाधिकारों का अतिक्रमण कर सकें। यहां तक कि कई अवसरों पर इस दोषपूर्ण विधिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप पूर्णतया निर्दोष व्यक्तियों को भी अनावश्यक रूप से दंडादेश भुगतने के लिए विवश होना पड़ता था और वह भी मात्र इस कारणवश कि वे संदिग्ध की श्रेणी में आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन व्यवस्था में अपराधियों के सुधारात्मक पक्ष या पुनर्वास की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि पुरातन आपराधिक विधि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों एवं

मानवाधिकार जैसे तथ्यों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी तथा अभियुक्तों के प्रति तो यह विशिष्ट रूप से कठोर एवं संकुचित रूप धारण कर लिया करती थी।

वास्तव में पुरातन आपराधिक विधि से निरंतर उद्भूत होने वाली इन्हीं प्रमुख समस्याओं का यह परिणाम था कि इसके फलस्वरूप जहां एक ओर जन-आक्रोश ने जन्म लेना प्रारंभ कर दिया वहीं दूसरी ओर हमारी विधायिका भी नित्य प्रति यह सोचने के लिए विवश होती चली गई कि आखिरकार वे कब तक इस बोझिल व बर्बर प्रणाली का अनुसरण करते रहेंगे अर्थात् शनैः शनैः उनका यह समाधान होने लगा कि जब तक वे तत्कालीन आपराधिक विधिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों को वरीयता नहीं देंगे तथा अभियुक्तों के लिए उनके अन्वेषण, जांच एवं विचारण से संबंधित प्रत्येक प्रक्रम पर एक पूर्णतया सुनिश्चित, स्पष्ट, त्वरित एवं पारदर्शी प्रक्रियावली विहित नहीं कर लेंगे तब तक उनका विधिशास्त्र सही अर्थों में सभ्य नहीं बन पाएगा और परिणामस्वरूप आपराधिक न्याय प्रशासन के अभिकरणों पर यदा-कदा मानवाधिकार हनन के आरोप-प्रत्यारोप लगते रहा करेंगे तथा एक दिन ऐसा भी आएगा जबकि देश का हर नागरिक कानून व्यवस्था में अपना विश्वास खो देगा।

इन्हीं सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए हमारे राष्ट्र में कई चरणों के अधीन आधुनिक अपराध शास्त्र को अपनाया गया जिसमें विशिष्ट रूप से इस बात की व्यवस्था की गई कि विधि की सभी शाखाएं बिना किसी पूर्वाग्रह या पक्षपात के प्रत्येक मनुष्य के मूलभूत मानवाधिकारों का उचित सम्मान करें चाहे भले ही वह अभियुक्त की कोर्ट में क्यों न आता हो। साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से सुनिश्चित किया गया कि एक साम्यपूर्ण विधि अपने वास्तविक अर्थों में कभी भी क्रूर नहीं हो सकती और न ही कभी इस बात को प्रोत्साहित कर सकती है कि व्यक्तियों के प्राण या दैहिक स्वतंत्रता का

वचन ऐसी कानूनी प्रक्रियाओं द्वारा किया जाए जो कि प्रथम दृष्टया ही निरंकुश, असहनीय व मनमानी प्रतीत होती हों। इसी कारण आधुनिक अपराध शास्त्र में सर्वाधिक ध्यान पूर्वोक्त प्रकृति की दोषपूर्ण प्रक्रियाओं को उचित, निष्पक्ष व न्यायसंगत रूप देने की ओर केंद्रित किया गया और तत्पश्चात इसी अनुक्रम में अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कुछ विशेष प्रकार के अधिकार, उपचार एवं सुरक्षोपाय विहित कर दिए गए ताकि उन्हें प्रत्येक स्तर पर प्रभावी ढंग से अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके और अंततः केवल वही व्यक्ति दंड के भागी बने जिनका दोष सभी संदेहों से परे साबित होता है न कि हर आरोपित व्यक्ति।

आधुनिक भारतीय अपराध शास्त्र में अंतर्विष्ट अभियुक्त के इन्हीं मूलभूत अधिकारों में से कुछ प्रमुख का विवरण निम्नलिखित है----

#### ❖ निर्दोषिता की उपधारणा का अधिकार

जब तक किसी अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोप सभी संदेहों से परे निश्चयात्मक रूप में साबित नहीं हो जाते तब तक उसके निर्दोष होने की ही उपधारणा की जाएगी।

*(भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 एवं कली राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1973 सु.को. 2773)*

#### ❖ सम्यक ढंग से गिरफ्तारी, तलाशी, पूछताछ व अभिग्रहण किए जाने का अधिकार

यद्यपि आपराधिक विधिशास्त्र पुलिस को अपना अन्वेषण प्रभावी बनाने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों की गिरफ्तारी, तलाशी, पूछताछ व अभिग्रहण जैसी सामान्य विधिक प्रक्रियाओं का अवलंब लेने के लिए सशक्त करता है लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि पुलिस इस दौरान अभियुक्तों के साथ अमानवीय

व्यवहार करने लगे या अनावश्यक रूप से हथकड़ियों का प्रयोग करें बल्कि उसे प्रत्येक अवस्था में अपेक्षित कानूनी औपचारिकताओं का अनुपालन सम्यक ढंग से सुनिश्चित करना होगा।

(दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46, 49, 50, 51, 57, 100 व 165, अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 15, डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए.आई.आर. 1997 सु.को. 610, प्रेमशंकर बनाम दिल्ली प्रशासन, ए.आई.आर. 1980 सु.को. 898, भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1992 एस.सी.सी. 249 इत्यादि)

#### ❖ गिरफ्तारी के कारण जानने का अधिकार

किसी भी आपराधिक आरोप के संबंध में गिरफ्तार किए गए अभियुक्त को सर्वप्रथम उसकी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराया जाएगा।

(भारतीय संविधान का अनु. 22(1), दं.प्र.सं. की धारा 50, 55 व 75 तथा स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधि. 1985 की धारा 52 (1) )

#### ❖ अपनी अभिरुचि के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने एवं प्रतिरक्षा कराने का अधिकार

प्रत्येक अभियुक्त को अपनी पसंद के किसी भी अधिवक्ता से सलाह लेने एवं उसके माध्यम से अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण अधिकार होगा।

(भारतीय संविधान का अनु. 22(1) एवं दं.प्र.सं. की धारा 303)

#### ❖ निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार

यदि अभियुक्त के पास इतने पर्याप्त साधन नहीं हैं कि वह अपनी प्रतिरक्षा के लिए कोई विधि-व्यवसायी

नियुक्त कर सके तो ऐसी विकट परिस्थिति में उसे राज्य के व्यय पर निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाएगी ताकि वह आर्थिक नियोग्यता के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाए।

(भारतीय संविधान का अनु. 21 व 39-क, द.प्र.सं. की धारा 304, विधिक सेवा प्राधिकरण अधि. 1987 तथा एम.एच. हासकॉट बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1978 सु.को. 1548)

#### ❖ आत्म-अभिज्ञान के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार----

किसी भी अभियुक्त को स्वयं अपने ही विरुद्ध साक्ष्य देने या कोई संस्वीकृति करने या अपराध में आलिप्त करने वाले प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

(भारतीय संविधान का अनु. 20(3), द.प्र.सं. की धारा 161(2), 163 व 316, भा. साक्ष्य अधि. की धारा 24, भा. दंड संहिता की धारा 330 व 331 तथा नंदिनी सप्तथी बनाम पी.एल. दानी ए.आई.आर. 1978 सु.को. 1025)

#### ❖ गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश होने का अधिकार

अभियुक्त की गिरफ्तारी के पश्चात् उसे 24 घंटों के भीतर (जिसमें गिरफ्तारी स्थल से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक पहुंचने में लगा आवश्यक समय सम्मिलित नहीं है) प्रत्येक स्थिति में मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना अनिवार्य होगा अन्यथा उसकी अभिरक्षा कानून की दृष्टि में अवैध हो जाएगी।

(भारतीय संविधान का अनु. 22(1) तथा दं.प्र.सं. की धारा 57, 76 व 167)

#### ❖ चिकित्सीय परीक्षण कराए जाने का अधिकार

यदि किसी आपराधिक प्रकरण में गिरफ्तार किया गया अभियुक्त न्यायालय के समक्ष लाए जाने पर यह अभिवचन करता है कि उसे पुलिस अभिरक्षा में शारीरिक यातनाएं दी गई हैं या वह अपने शरीर की चिकित्सीय जांच द्वारा इस तथ्य को भली-भांति साबित कर सकता है कि उसने आरोपित अपराध नहीं किया तो ऐसी अवस्था में अभियुक्त के शरीर का परीक्षण तत्काल किसी रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायी द्वारा कराया जाएगा।  
(दं.प्र.सं. की धारा 54 एवं शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1983 सु.को. 378)

❖ **अवैध निरुद्ध की दशा में बंदी-प्रत्यक्षीकरण लेख द्वारा मुक्त होने का अधिकार**

यदि किसी अभियुक्त को अन्वेषण संस्थाओं या कारागार प्रशासन द्वारा अवैधानिक रूप से अपनी अभिरक्षा में निरुद्ध करके रखा गया है तो ऐसी दशा में न्यायपालिका की शीर्ष संस्थाएं तत्काल बंदी-प्रत्यक्षीकरण लेख जारी करके उसे मुक्ति दिला सकेंगी और यदि प्रकरण अत्याधिक गंभीर पाया जाता है तो राज्य को इसके एवज में अभियुक्त को प्रतिकर भी देना होगा।

(भारतीय संविधान का अनु. 21, 32 व 226 तथा रूदल शाह बनाम बिहार राज्य, (1983)4 एस.सी.सी. 141)

❖ **जमानत पाने का अधिकार**

किसी भी अवस्था में अभियुक्त की दैहिक स्वतंत्रता को अनावश्यक रूप से प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा अर्थात् यदि यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त को मामले के संपूर्ण विनिश्चय तक अभिरक्षा में रखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है तो ऐसी दशा में न्यायालय तत्संबंधी अन्य सुसंगत परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए उसे जमानत का लाभ देकर अस्थायी तौर पर मुक्त कर सकेगा।

(भारतीय संविधान का अनु. 21, दं.प्र.सं. की धारा 167(2), 389, 436-439 एवं प्रत्यर्पण अधि. 1962 की धारा 25)

❖ **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायाधीश द्वारा विचारण कराए जाने का अधिकार**

सामान्यतया किसी अभियुक्त का विचारण ऐसे न्यायाधीश द्वारा किया जाना अनुमन्य नहीं होगा जोकि संबंधित मामले में कोई व्यक्तिगत हित रखता है या स्वयं पक्षकार है अन्यथा निर्णय के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना बनी रहेगी।

(दं.प्र.सं. की धारा 195 व 479 तथा सुधींद्र नाथ बनाम राज्य, 1957 कि.लॉ.ज. 1245)

❖ **संपूर्ण न्यायिक एवं न्यायिकेत्तर कार्यवाहियों के दौरान समानता का व्यवहार पाने का अधिकार**

अभियुक्त के विरुद्ध समस्त दंडिक कार्यवाहियों का संचालन एक समतामूलक एवं निष्पक्ष वातावरण में किया जाएगा अर्थात् जो प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय, उपचार एवं अवसर एक अभियुक्त को प्रदत्त किए जाते हैं ठीक वही, आमतौर पर दूसरे अभियुक्तों को भी बिना किसी पक्षपात के उपलब्ध कराए जाएंगे।

(भारतीय संविधान का अनु. 14 व 21 तथा करतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 1985 क्राइम्स 341)

❖ **खुले न्यायालय में कार्यवाहियां संचालित कराए जाने का अधिकार**

प्रायः अभियुक्त के मामले का न्याय-निर्धारण खुले न्यायालय में किया जाएगा ताकि ऐसी कार्यवाहियों के संबंध में किसी भी प्रकार की संदिग्धता न बनी रहे।  
(दं.प्र.सं.) की धारा 327)

❖ **कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आधार न होने**

### पर उन्मोचन का अधिकार

यदि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभिलेख की संपूर्ण सामग्री भी अभियुक्त को आरोपित अपराध के साथ युक्तियुक्त रूप से जोड़ने में अक्षम साबित हो रही है तो ऐसी स्थिति में उसे व्यर्थ के विचारण से सुरक्षा प्रदान करते हुए प्रारंभ में ही उन्मोचित कर दिया जाएगा। (दं.प्र.सं. की धारा 227, 239, व 245)

### ❖ सद्भावी लोकसेवक होने की स्थिति में, विशिष्ट संरक्षण पाने का अधिकार

यदि अभियुक्त कोई लोकसेवक है तथा उसने आरोपित अपराध अपने पदीय कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन के दौरान कारित किया है तो ऐसी अवस्था में उसके विरुद्ध अभियोजन चलाने हेतु सर्वप्रथम संबंधित सरकार की पूर्व अनुमति लिया जाना आवश्यक होगा ताकि प्रकरण निरर्थक पाए जाने पर उसे प्रारंभ में ही निवारित किया जा सके। (दं.प्र.सं. की धारा 197, तथा आवश्यक वस्तु अधि. 1955 की धारा 15-क)

### ❖ परिसीमा अवधि बीत जाने के पश्चात् कतिपय अपराधों व आपराधिक कार्रवाहियों के संज्ञान पर निषेध का अधिकार

न्यायालय द्वारा कुछ विशिष्ट अपराधों व दांडिक कार्रवाहियों का संज्ञान एक नियत समयावधि के भीतर ही लिया जाएगा इसके पश्चात् नहीं ताकि अत्यंत देरी से अभियोजन संस्थित करके या दांडिक कार्रवाहियां प्रारंभ करके मात्र न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने वाले व्यक्तियों को रोका जा सके। (दं.प्र.सं. की धारा 468, परिसीमा अधि. 1963 तथा पशु क्रूरता निवारण अधि. 1960 की धारा 36)

### ❖ अभियोजन का आधार कहे जाने वाले

### दस्तावेजों की प्रतिलिपियां पाने का अधिकार

यदि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई आपराधिक मामला बन रहा है तो न्यायालय का यह प्रमुख दायित्व होगा कि वह अभियुक्त को इस विषयक आरोपित करने से पूर्व उन सभी दस्तावेजों की प्रतिलिपियां उपलब्ध कराना सुनिश्चित करे जिस पर अभियोजन आधारित है ताकि अभियुक्त उनसे भली-भांति अवगत होकर अपनी प्रतिरक्षा के लिए तैयार हो सके।

(दं.प्र.सं. की धारा 173(7), 207 व 208, लोक सेवक (जांच) अधि. 1850 की धारा 10 तथा गुरवचन सिंह ब. पंजाब राज्य, ए.आई.आर.1957 सु.को.623)

### ❖ आरोपों से भली-भांति अवगत होने का अधिकार

यदि न्यायालय, पुलिस या अभियोजन पक्ष द्वारा संकलित किए गए दस्तावेजों, रिपोर्टों व बयानों इत्यादि के आधार पर अभियुक्त को कतिपय अपराधों के संबंध में आरोपित करता है तो ऐसी दशा में वे समस्त आरोप अनिवार्य रूप से अभियुक्त को पढ़कर सुनाए व समझाए भी जाएंगे ताकि वह उन आरोपों की प्रकृति को भली-भांति समझ सके और साथ ही यह भी जान सके कि उसे विचारण के दौरान किन-किन तथ्यों का सामना करना है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि यह महत्वपूर्ण दायित्व स्वयं उसी न्यायालय पर होगा जिसने आरोप विरचित किया है।

(दं.प्र.सं. की धारा 228(2), 240(2), 246(2), व 251)

### ❖ शीघ्र विचारण का अधिकार

आपराधिक न्याय-प्रशासन के सभी घटकों का यह महत्वपूर्ण दायित्व होगा कि वे अभियुक्त का शीघ्र विचारण सुनिश्चित करें जिसमें अन्वेषण, जांच, अपील



व पुनरीक्षण इत्यादि सभी प्रक्रम सम्मिलित हैं अर्थात् वे इस बात के सर्वोत्तम प्रयास करें कि अभियुक्त की दोषिता या निर्दोषिता का अवधारण युक्तियुक्त शीघ्रता के साथ संपन्न हो जाए।

(भा.संविधान का अनु. 21, दं.प्र.सं. की धारा 56, 157(1), 167, 173(1), 309, 468 तथा ए.आर. अंतुले ब.आर.एस. नायक, (1992), एस.सी.सी.-225)

❖ **विशिष्ट परिस्थितियों में न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट पाने का अधिकार**

यदि अभियुक्त न्यायालय के समक्ष अपनी किसी विवशता जैसे कि बीमारी, वृद्धावस्था, दूरस्थ निवास या आर्थिक विपन्नता इत्यादि को दर्शाकर यह निवेदन करता है कि उसे व्यक्तिशः उपस्थिति से अभिमुक्ति दे दी जाए तो ऐसी दशा में न्यायालय अपने उदार दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उसे इस बात के लिए बाध्य नहीं करेगा जब तक कि ऐसा करना न्याय हित के प्रतिकूल न हो।

(दं.प्र.सं. की धारा 205, 317)

❖ **विचारण के दौरान न्यायालय में बैठने का अधिकार**

सामान्यतया अभियुक्त को इस बात के लिए विवश नहीं किया जाएगा कि वह विचारण की संपूर्ण अवधि के दौरान निरंतर खड़ा रहे बल्कि कुछ विशिष्ट प्रयोजनों जैसे कि पीठासीन न्यायाधीश के न्यायालय में प्रवेश करते समय या शिनाख्त इत्यादि को छोड़कर उसे न्यायिक कार्रवाहियों के संचालन के समय बैठने की अनुमति दी जा सकेगी।

(दं.प्र.सं. की धारा 477 तथा अवतार सिंह ब. मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1982 सु.को. 1260)

❖ **आपराधिक विधियों का कठोरतापूर्वक निर्वचन कराए जाने का अधिकार**

न्यायालय कभी भी किसी आपराधिक विधि के उपबंध को ऐसा अर्थ नहीं दे सकेंगे जिससे कि अभियुक्त अनावश्यक रूप से संकट में पड़ जाए या उसके हितों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगे अर्थात् यदि किसी उपबंध के अर्थान्वयन पर दो मत संभव हों तो ऐसी दशा में आमतौर पर उस मत को स्वीकार किया जाएगा जो कि अभियुक्त के पक्ष में है।

(भा.दं.प्र.सं. की धारा 82 व 83 तथा सी.बी.आई.ब. अनुपम जे.कुलकुर्णी, ए.आई.आर. 1992 सु.को.1768)

❖ **विकृतचित्त, अल्पायु, रोगी या स्त्री होने अथवा अभियुक्त का प्रथम अपराध पाए जाने की दशा में विशेष सहानुभूति पाने का अधिकार**

यदि अभियुक्त अपराध कारित करने के समय या संबंधित मामले का अन्वेषण, जांच या विचारण किए जाने के समय विकृतचित्त, रोगी, स्त्री या अल्पायु पाया जाता है या यह तथ्य प्रकट होता है कि अभियुक्त का यह प्रथम अपराध था तो ऐसी मार्मिक स्थिति में उसके साथ अन्य साधारण अभियुक्तों की भांति प्रायिक व्यवहार नहीं किया जाएगा बल्कि तब विशिष्ट रूप से मानवीय दृष्टिकोण को वरीयता दी जा सकेगी।

(भा.दं.प्र.सं. की धारा 82, 83 व 84 दं.प्र.सं. की धारा 47 (2), 51(2), 53(1), 100 (3), 160(1), 318, 328-339, 360, 416, 437 (1), व 448 किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधि., 2000, अपराधी परिवीक्षा अधि., 1958 तथा इंदर सिंह और अन्य ब. राज्य, ए.आई.आर. 1978 सु.को. 1091)

❖ **समस्त साक्ष्य अपनी उपस्थिति में लेखबद्ध कराए जाने का अधिकार**

आपराधिक विचारणों में समस्त साक्ष्य चाहे वह

अभियोजन पक्ष का हो या बचाव पक्ष का, सामान्यतः अभियुक्त की उपस्थिति में ही लिया जाएगा।

(दं.प्र.सं. की धारा 273 तथा रतीलाल ब. महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1972 सु. को. 1567)

❖ **साक्षियों के परीक्षण के समय, पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति पर आपत्ति करने का अधिकार**

यदि न्यायालय के भीतर किसी पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति के उपस्थित रहने मात्र से अभियुक्त के विचारण पर या उस साक्षी की मनोदशा पर जिसका परीक्षण किया जा रहा है, कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है तो ऐसी दशा में अभियुक्त को यह अधिकार होगा कि वह इन व्यक्तियों को न्यायालय के भवन से निष्कासित कर सके।

(दं.प्र.सं. की धारा 327 तथा डा. काशी अय्यर ब. केरल राज्य 1966 कि.लॉ.ज. 1445)

❖ **अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार**

अभियुक्त को अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत किए गए प्रत्येक साक्षी को प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा ताकि वह उन साक्षियों के कथनों में कोई अनियमितता, विरोधाभास या कपट का अंश विद्यमान होने पर उसे न्यायालय के समक्ष प्रकट कर सके और अंततः इसका दुष्परिणाम भुगतने से बच जाए।

(भा.साक्ष्य अधि. की धारा 138 तथा ब्रदी ब. राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 1976 सु.को. 560)

❖ **अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार**

किसी भी अभियुक्त पर चाहे भले ही कितने गंभीर आरोप क्यों न हों लेकिन फिर भी उसे अपने बचाव में साक्ष्य देने के अवसर से निवारित नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त वह अपनी प्रतिरक्षा हेतु स्वयं भी एक सक्षम साक्षी जाना जाएगा और इस प्रकार अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों को नासाबित कर सकेगा।

(दं.प्र.सं. की धारा 233, 243, 247, 254 (1), व 315 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधि. 1988 की धारा 21)

❖ **मौन रहने का अधिकार**

जब न्यायालय अभियोजन साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् अभियुक्त से उन तात्विक तथ्यों के बारे में अपना स्पष्टीकरण देने के लिए कहता है जो कि अभिलेख पर उसके विरुद्ध दृश्यमान है तो ऐसी अवस्था में यदि अभियुक्त चाहे तो इस विषयक कुछ भी कहने से इंकार कर सकता है तथा अभियुक्त का इस प्रकार मौन रहना किसी भी दृष्टिकोण से उसकी दोषिता का निश्चायक सबूत नहीं माना जाएगा और न ही किसी प्रतिकूल उपधारणा को जन्म देगा।

(भा.संविधान का अनु. 20(3), दं.प्र.सं. की धारा 313(3) तथा नागप्पा ब. स्टेट आफ कर्नाटक ए.आई.आर. 1975 सु.को. 573)

❖ **साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात् बहस करने का अधिकार**

अभियुक्त पक्ष का साक्ष्य समाप्त होते ही उसे यह मूल्यवान अवसर भी दिया जाएगा कि वह मौखिक या लिखित बहस द्वारा उन सभी तर्कों को न्यायालय के समक्ष प्रभावशाली ढंग से रखे जो कि अभियोजन पक्ष के कथानक का खंडन करते हैं और साथ ही उसकी निर्दोषिता को पूर्णतया न्यायसंगत ठहराते हैं।

(दं.प्र.सं.की धारा 234, 314)

❖ **संदेह का लाभ पाने का अधिकार**

यदि न्यायालय के मस्तिष्क में अभियुक्त के विरुद्ध

लगाए गए आरोपों की सत्यता को लेकर तनिक मात्र भी युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न हो जाता है तो ऐसी दशा में इसका लाभ निश्चित रूप से अभियुक्त को दिया जाएगा।

(पंजाब राज्य ब. भजन सिंह, ए.आई.आर. 1975 सु.को. 258)

❖ **बिना किसी युक्तियुक्त आधार के कार्रवाहियां संस्थित होने पर प्रतिकार पाने का अधिकार**

यदि किसी व्यक्ति ने अभियुक्त के विरुद्ध कोई दंडित कार्रवाही पर्याप्त आधार विद्यमान न होने के बावजूद भी एकमात्र इस उद्देश्य से संस्थित की है ताकि उसका अनावश्यक उत्पीड़न किया जा सके तो ऐसी दशा में न केवल अभियुक्त के विरुद्ध समस्त कार्रवाहियां अभिखंडित कर दी जाएगी अपितु उसे उक्त व्यक्ति की ओर से प्रतिकार भी दिलवाया जाएगा।

(दं.प्र.सं.की धारा 250, 358 व 482)

❖ **कुछ विशिष्ट दशाओं के अधीन अपराध कारित करने पर आपराधिक दायित्व से मुक्त होने का अधिकार**

यदि अभियुक्त ने कोई अपराध बिना किसी दुराशय के मात्र विवशता के वशीभूत होकर या विकृतचित्ता के अधीन या तथ्य संबंधी भूलवश या शरीर व संपत्ति की प्रतिरक्षार्थ जैसी कुछ असाधारण परिस्थितियों के अधीन कारित कर दिया है तो ऐसी स्थिति में उसे आपराधिक दायित्व से मुक्त भी किया जा सकेगा।

(भा.दं. सं. की धारा 76-106)

❖ **दोहरे दंड से सुरक्षा का अधिकार**

किसी भी अभियुक्त को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित व दंडित नहीं किया जाएगा।

(भा.संविधान का अनु. 20(2), दं.प्र.सं. की धारा 300 तथा साधारण खंड अधि. 1897 की धारा 27)

❖ **कार्योत्तर विधि के अधीन दोषसिद्धि या वर्द्धित दंड से बचाव का अधिकार**

कोई भी व्यक्ति भविष्य में उस कार्य के लिए दंडित नहीं किया जाएगा जो कि उसे किए जाने के समय तक अपराध की श्रेणी में नहीं आता था। ठीक इसी प्रकार, किसी अभियुक्त को उससे अधिक दंड का पात्र नहीं बनाया जाएगा जो कि उस अपराध के करने के समय किसी प्रवृत्त विधि के अधीन उसे दिया जा सकता था।

(भा.संविधान का अनु. 20(1), तथा केदारनाथ बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल, ए.आई.आर. 1953 सु.को. 404)

❖ **दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई का अधिकार**

यदि कोई न्यायालय विचारणोपरांत अभियुक्त को आरोपित अपराध का दोषी पाता है तो ऐसी दशा में वह अभियुक्त को दंडादेश देने से पूर्व इस विषयक सुनवाई का एक अवसर अवश्य देगा ताकि दंडादेश नियत करते समय अभियुक्त से संबंधित वैयक्तिक कारकों जैसे कि उसकी सामाजिक स्थिति, आयु, शैक्षिक योग्यता, पारिवारिक दशा व नियोजन इत्यादि को भी ध्यान में रखा जा सके।

(दं.प्र.सं. की धारा 235(2) व 248(2))

❖ **विचाराधीन बंदी के रूप में निरुद्ध अवधि को कारावास के दंडादेश में समायोजित कराए जाने का अधिकार**

यदि किसी आपराधिक मामले के अन्वेषण जांच या विचारण के दौरान अभियुक्त को कुछ अवधि तक

निरोध में रहना पड़ा है और तत्पश्चात् वह दोषसिद्धि पाए जाने पर पुनः कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है तो ऐसी अवस्था में अभियुक्त द्वारा दोषसिद्धि से पूर्व भोगी गई निरोध की अवधि को उसके दंडादेश में निर्दिष्ट कारावास की अवधि में से कम कर दिया जाएगा।

(दं.प्र.सं. की धारा 428)

#### ❖ निर्णय या आदेश की प्रतियां पाने का अधिकार

अभियुक्त को अपने विरुद्ध पारित समस्त निर्णयों व आदेशों की प्रतियां तत्काल संबंधित न्यायालय से मांगने का अधिकार होगा।

(दं.प्र.सं. की धारा 363 एवं एम.एच. हॉसकाट बनाम महाराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1978 सु. को. 1548)

#### ❖ दोषसिद्धि के मामले में अपील का अधिकार

यदि अभियुक्त का यह मानना है कि उसकी दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पूर्णतया असंगत अनुचित या अवैधानिक आधारों पर की गई है तो ऐसी अवस्था में वह उक्त आदेश को अपील इत्यादि के माध्यम से वरिष्ठ न्यायालयों में चुनौती दे सकेगा।

(भा.संविधान का अनु. 132, 134 व 136 तथा दं.प्र.सं.की धारा 351, 374, 379 व 380)

#### ❖ दया याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार

यदि अभियुक्त की दोषसिद्धि को न्यायपालिका के सभी सोपानों द्वारा अंतिम रूप से न्याय संगत ठहरा दिया गया है तो भी राष्ट्रपति या राज्यपाल अभियुक्त की ओर से अपने समक्ष दया याचिका प्रस्तुत होने पर उसे क्षमादान दे सकेंगे।

(भा.संविधान का अनु. 72 व 161)

#### ❖ न केवल दोषसिद्धि होने से पूर्व अपितु

### दोषसिद्धि के पश्चात् भी मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार

अभियुक्त व्यक्ति की स्थिति चाहे विचाराधीन बंदी की हो या दोषसिद्धि बंदी की या फिर वह जमानत पर अवमुक्त होकर समाज में विचरण कर रहा हो उसका मानव गरिमा के साथ जीवन जीने का अधिकार अन्य साधारण व्यक्तियों की भांति प्रत्येक अवस्था में सुरक्षित बना रहेगा यहां तक कि कारागार में भी उसे अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे कि भोजन, चिकित्सा, धार्मिक कर्मकांड, मानवोचित व्यवहार, सगे संबंधियों से मेल मिलाप के अवसर तथा विधिक परामर्श इत्यादि से किसी विशिष्ट कारण के अभाव में वंचित नहीं किया जाएगा।

(भा.संविधान का अनु. 21 दं.प्र.सं. की धारा 416, कारागार अधि. 1894 की धारा 24(3) 27, 37 व 40 तथा सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, ए.आई.आर.1978 सु.को.1675 व शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1983 सु.को. 378 इत्यादि)

अतः इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के समग्र परिशीलन के आधार पर यह कहना पूर्णतया न्यायसंगत होगा कि आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र ने अभियुक्तों के मानवाधिकारों को विधायी मान्यता देकर यह बात सभी संदेहों से परे स्पष्ट कर दी है कि इसका मूलभूत लक्ष्य केवल अपराधियों को दंडित करना ही नहीं है बल्कि निर्दोष व्यक्तियों के लिए एक सुरक्षा कवच की भूमिका भी निभाना है अर्थात् सही अर्थों में न्याय सुनिश्चित करना है, जोकि यथार्थ में केवल तभी संभव है जबकि अभियुक्त के विरुद्ध समस्त दंडिक कार्रवाहियों का संचालन एक ऋजु, निष्पक्ष व साम्यपूर्ण वातावरण में किया जाए तथा आपराधिक न्याय प्रशासन का कोई भी अभिकरण, अभियुक्तों के प्रति पूर्वाग्रह की भावना न रखे।

हालांकि अब अपराध के विषय को लेकर समाज की धारणा में व्यापक परिवर्तन होने लगा है तथा जनसाधारण ने भी न्यूनाधिक रूप में अभियुक्तों के हितार्थ अपनाई गई इस मानवतावादी व्यवस्था को अपने मन एवं तर्क द्वारा स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया है। लेकिन इसके बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि आज भी समाज में संकीर्ण मानसिकता एवं अल्प ज्ञान रखने वाला एक वर्ग निरंतर इस विषयक यह भ्रांतियां प्रसारित कर रहा है कि इस नवीन व्यवस्था में पीड़ित पक्ष की पूर्णतया उपेक्षा कर दी गई है तथा इसका मुख्य ध्यान एक मात्र रूप से अभियुक्तों के प्रति अकारण सहानुभूति दर्शाए जाने पर ही केंद्रित है अर्थात् इस प्रणाली में अभियुक्तों के अधिकारों को अनावश्यक रूप से अत्यधिक विस्तार दे दिया गया है तथा कहीं न कहीं यह कारक देश के भीतर बढ़ती हुई अपराध संख्या के लिए भी उत्तरदायी है।

यदि हम निष्पक्ष होकर इस स्थिति का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन तर्कों में कोई भी गुणवत्ता नहीं है वस्तुतः अभियुक्त के इन मूलभूत अधिकारों को आधुनिक अपराधशास्त्र में स्थान देकर भारतीय विधिक प्रणाली ने कोई अनोखा या नवीन कार्य नहीं किया है बल्कि वास्तविकता तो यह है कि इन अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर भी विभिन्न प्रकार की प्रसंविदाओं, घोषणाओं, दस्तावेजों व अभिसमयों इत्यादि के अंतर्गत समय-समय पर समुचित मान्यता प्रदत्त की जाती रही है। इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र में जहां एक ओर अभियुक्तों के लिए ये समस्त अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं। वहीं दूसरी ओर नियंत्रण एवं संतुलन की पद्धति का अनुसरण करते हुए इस बात का भी विशिष्ट ध्यान रखा गया है कि कहीं अभियुक्तगण, विधि द्वारा प्रदत्त इन सुविधाओं का अनुचित लाभ उठाकर इनका दुरुपयोग न कर सके। वास्तव में इसी मंशा से इन

समस्त अधिकारों को आत्यंतिक रूप नहीं दिया गया है बल्कि इनमें से अधिकांश को प्रदत्त करना या न करना न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ा गया है ताकि समाज व पीड़ित पक्ष के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर इन अधिकारों पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सके और इस प्रकार किसी के साथ भी अन्याय कारित न होने पाए।

जहां तक अभियुक्त के साथ व्यवहार किए जाने की बात है तो हमें यह तथ्य सदैव स्मरण में रखना चाहिए कि अपराध करने मात्र से कोई व्यक्ति अमानव नहीं बन जाता और न ही अभियुक्त होने का एक मात्र अर्थ यह है कि उसे समाज द्वारा बिल्कुल उपेक्षित या निःसहाय कर दिया जाए। आखिरकार वह भी एक मानव है और हमारे ही समाज का अंग है। हो सकता है कि अपराध कारित करने के पीछे अभियुक्त का कोई भी दुराशय न रहा हो बल्कि उसके हाथों अपराध, मात्र दुर्घटनावश या किसी सामाजिक विवशता के अधीन या अपने मान सम्मान, जीवन व सम्पत्ति की रक्षार्थ अचानक घटित हो गया हो। इसके अतिरिक्त यह भी नितान्त संभव है कि कुछ दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों ने उसका नाम पुलिस/न्यायिक अभिलेखों में जानबूझकर किसी अप्रत्यक्ष हेतु या दुर्भावना से प्रेरित होकर अभियुक्त के रूप में प्रविष्ट करा दिया हो। साथ ही इस बात की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि पुलिस जिन व्यक्तियों को संदेह के आधार पर गिरफ्तार करके न्यायतंत्र के समक्ष प्रस्तुत करती है, वे सभी अंततः अपराधी ही निकले अर्थात् उनमें से कुछ व्यक्ति न्यायालय द्वारा पूर्णतया निर्दोष भी साबित हो सकते हैं। इसी अनुक्रम में एक अन्य कटु सत्य यह भी है जब कभी अभियोजन अपने मामले को दुर्बल पाता है तो ऐसी स्थिति में उसका एक मात्र ध्येय केवल यही रह जाता है कि येन-केन प्रकारेण विचारण को लंबित रखकर अभियुक्त को अधिक से अधिक अवधि तक

कारागार में निरुद्ध रखा जाए। इसके अलावा हमारे सम्मुख ऐसे अनेक उदाहरण भी नित्य प्रति प्रकट होते रहते हैं जिनमें कि अभियुक्त को विचारणोपरांत जितना कारावास भुगतना होता है उससे अधिक अवधि का कारावास वह पहले ही कारागार में व्यतीत कर चुका होता है। इन सबके अतिरिक्त प्रायः पुलिस पर भी दिन प्रतिदिन यह आरोप लगते रहते हैं कि वह अन्वेषण के दौरान अभियुक्तों के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार करती है, कई-कई दिनों तक उन्हें अवैध रूप से अपनी अभिरक्षा में रखती है तथा अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य करती है।

वस्तुतः यदि इस पृष्ठभूमि में अभियुक्त के पूर्वोक्त अधिकारों पर एक बार पुनः दृष्टि डाली जाए तो कदाचित्त ये अधिकार हमें बहुत ही कम प्रतीत होंगे और केवल तभी हमें इस तथ्य की वास्तविक अनुभूति हो पाएगी कि आधुनिक भारतीय अपराधशास्त्र ने अभियुक्तों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाकर कोई त्रुटि कारित नहीं की है बल्कि सही अर्थों में न्याय की भावना को ही पुष्ट किया है।



# महिला हिंसा-विकास में एक रोड़ा

अरविंद कुमार चौबे

मो. इंदिरा नगर, पो. तेतरी बाजार,  
जी जी आई सी रोड, निकट सिंहेश्वरी कालेज,  
जिला सिद्धार्थ नगर-272207 (उ.प्र.)

वैदिक काल में नारियों को शिक्षा के समान अवसर सुलभ थे। स्त्रियां युद्ध अस्त्रों का निर्माण भी करती थीं। वे अपने पतियों के साथ युद्ध में भाग लेती थीं, धनुर्वेद और घुड़सवारी में प्रवीण थीं। उन्हें वेदों व पुराणों का ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। कुछ स्त्रियां ऋषि भी थीं, वे वेद-मंत्रों की शिक्षा भी प्रदान करती थीं। पत्नी के अभाव में किए गए धार्मिक कार्य अपूर्ण समझे जाते थे।

वैदिक युग में महिलाओं को स्वयंवर प्रथा के अंतर्गत वर-चयन की स्वतंत्रता प्राप्त थी, फिर भी परिवार का मुखिया पिता ही होता था तथा पुत्र का जन्म होना अधिक आवश्यक एवं हर्षपूर्ण समझा जाता था। उत्तर वैदिक काल में स्थितियां काफी बदल गईं। मनु द्वारा निर्मित व्यवस्था ने महिलाओं को वेद-अध्ययन, मंत्रोच्चारण से वंचित कर दिया। मनु द्वारा निर्मित व्यवस्था ने स्त्रियों को घर के कामों तक सीमित रखा और अपने पति की सेवा को नारी-धर्म बताया। विवाह की आयु कम कर दी गई, फलस्वरूप स्त्रियां पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने से भी वंचित होने लगीं और अपने अधिकारों के प्रति नारियों में जागरूकता का अभाव होने लगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैदिक युग के बाद मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था ने महिलाओं को जीवन के प्रत्येक काल में पुरुषों पर आश्रित कर दिया।

भारतीय संस्कृति में नारी को अर्धांगिनी, धर्म-

पत्नी, शक्ति स्वरूपा, सहकर्मी, माँ आदि रूपों में जाना जाता है, परंतु यह तस्वीर का एक फलक है। तस्वीर के दूसरे फलक में महिलाओं के साथ मार-पीट, दुर्व्यवहार, बलात्कार जैसी घटनाएं आम बात हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि घर नारी के लिए सुरक्षा एवं प्रसन्नता की दृष्टि से स्वर्ग है, किंतु अनेक स्त्रियों के प्रति घर में हिंसात्मक व्यवहार किया जाता है। एक तरफ भारत में कन्याओं को लक्ष्मी का अंश मानकर उनकी पूजा की जाती है तो दूसरी तरफ यही समाज उसे बिना दहेज के स्वीकार करने को तैयार नहीं। दहेज के कारण अनेक लड़कियों व बहुओं को आत्महत्या तक करने को बाध्य होना पड़ता है, बहुत सी बहुओं को स्टोव और गैस सिलिण्डर की आड़ में जिंदा जला दिया जाता है। दहेज प्रथा के विकृत स्वरूप के कारण परिवार-जन को या तो कर्ज लेना पड़ता है या फिर जमीन-जायदाद तक बेचना पड़ता है अथवा उन्हें अपनी लड़कियों का विवाह अयोग्य लड़कों के साथ करने को बाध्य होना पड़ता है। भूमि के स्थानान्तरण व दहेज के भुगतान के संबंध में प. बंगाल के कुछ गांवों में गुप्ता (1997) के द्वारा किए गए अध्ययन से यह मालूम होता है कि दहेज की रकम के भुगतान के लिए बहुत से लोगों ने अपनी भूमि का विक्रय किया। वो भी घर की महिला भू-स्वामी व गृहिणी के ऊपर विक्रय का और भी अधिक दबाव होता है। गुप्ता (2002) ने पश्चिम बंगाल के कुछ गांवों के अध्ययन में पाया कि 870 गृहिणियों में से 33 प्रतिशत गृहिणियों ने दहेज की मांग पूरी करने के लिए अपने स्वामित्व वाली भूमि का विक्रय किया।

महिला हिंसा के विभिन्न स्तर व स्वरूपों में सबसे आधुनिक व घृणित तथा सामाजिक संरचना के लिए अत्यंत घातक--- 'कन्या भ्रूण हत्या' है। अब महिला हिंसा माँ के गर्भ से ही प्रारंभ हो चली है। कन्या का जन्म एक बोझ माना जाता है। अल्ट्रासाउण्ड, सोनोग्राफी आदि के द्वारा भ्रूण परीक्षण करके कन्या भ्रूण को समाप्त

करने का गुप्त व्यवसाय थम नहीं पाया है। 0 से 6 वर्ष तक के बच्चों का लिंगानुपात 1991 में 945 था, जो वर्ष-2001 में गिरकर 927 हो गया, जिसका कारण भ्रूण हत्या बताया गया। हमारे देश में 1901 में स्त्री-पुरुष अनुपात 972-1000 था जो 2001 में 933-1000 रह गया। आज नारी की मौलिकता का अपहरण घर-परिवार, कार्यालय कहीं पर भी हो सकता है। आज लगभग 60 प्रतिशत कार्यकारी महिलाओं एवं 55 प्रतिशत छात्राओं का कहना है कि कार्यस्थल, स्कूल, कालेज में उनके साथ यौन-दुर्व्यवहार आम बात है। दिल्ली महिला आयोग ने दिल्ली विश्वविद्यालय की 200 लड़कियों के अध्ययन में पाया कि 91.7 प्रतिशत लड़कियां कैम्पस में होने वाले यौन उत्पीड़न से पीड़ित थीं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रत्येक 54 मिनट में एक महिला के साथ बलात्कार की घटना होती है और इनमें से केवल 10 प्रतिशत घटनाओं की ही रिपोर्ट दर्ज हो पाती है। सेंटर फॉर वुमंस डेवलपमेंट स्टडीज के अध्ययनों के अनुसार भारत में प्रत्येक 35 मिनट में एक बलात्कार अर्थात् प्रतिदिन 42 महिलाओं के साथ बलात्कार होता है। यही नहीं लचर कानूनों के चलते प्रत्येक 5 बलात्कारी में से 4 बरी हो जाते हैं। एक मीडिया अध्ययन (सी-वोटर) के अनुसार दिल्ली में 86 प्रतिशत महिलाएं स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं।

बलात्कार की शिकार स्त्री सामाजिक निंदा के डर से प्रायः इस घटना को दबाने/छिपाने का प्रयास करती है। यदि कभी कोई पीड़ित महिला साहस भी करती है तो कानूनी दांव-पेंच के द्वारा अपराधी बच निकलते हैं। कभी-कभी कानून अपराधी को दंडित भी

करता है तो उसे समाज सहानुभूति की नजरों से देखने लगता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण धनन्जय फांसी कांड में देखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि बलात्कार की घटना के बारह घंटे के भीतर ही मेडिकल किया जाना कानूनी रूप से आवश्यक है।

एम. ए. अन्सारी ने लिखा है कि यह आवश्यक नहीं कि दरिद्र बालाएं/महिलाएं ही बलात्कार का शिकार होती हैं, शिक्षित व कामकाजी महिलाएं भी बलात्कार की शिकार हो जाया करती हैं। औद्योगीकरण, पाश्चात्य संस्कृति, सहशिक्षा, सहकार्य, मीडिया का अश्लील प्रदर्शन, उत्तेजक कपड़े, भड़काऊ गीत, उपभोगवाद की प्रवृत्ति, बाजारवाद का चलन जैसे प्रवृत्तियों के कारण बलात्कार की दर प्रत्येक समाज में बढ़ रही है। कई बार धार्मिक अंधविश्वास के कारण टोनही, डाइन कहकर कई महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया, निर्वस्त्र कर गांव में घुमाया गया। कभी-कभी स्त्री भी स्त्री के प्रति हिंसक व्यवहार करती है, दहेज हत्या, यौन-शोषण, कन्या भ्रूण हत्या में तो नारी की सक्रिय भूमिका देखी जा सकती है।

हिंसा की शिकार होने के बावजूद आर्थिक परानिर्भरता, सामाजिक बहिष्कार, बच्चों के प्रति प्रेम, अकेलापन, पुरुष प्रधानता, पूर्व जन्म का फल तथा अन्य परंपरावादी विचारधाराओं यथा 'पति-परमेश्वर' आदि के कारण स्त्री प्रायः सब कुछ सहन करने का प्रयास करती है। 'विधवापन' भारतीय समाज का कलंक है। पति की मृत्यु होते ही सिंदूर पोछना, मंगलसूत्र निकालना तथा श्वेत वस्त्र पहनाना स्त्री की निरीहता के पर्याप्त प्रमाण हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं पर होने वाली हिंसा (अपराधों का प्रतिशत)

सन्	1991	1992	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000
महिला हिंसा	0.62	0.69	0.75	0.81	4.63	5.28	5.49	5.70	6.67	6.37



**स्रोत :** साभार शोध पत्र; डा. प्रीति पचौरी

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1991 में जहां महिला हिंसा 0.62 प्रतिशत थी वहीं यह 10 वर्षों में बढ़कर 6.37 प्रतिशत हो गई। गौर तलब है कि जहां एक तरफ महिला हिंसा में वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी तरफ महिलाओं की संख्या (लिंगानुपात) में निरंतर कमी भी हो रही है, जो बेहद चिंता का विषय है।

### महिला हिंसा के दुष्परिणाम

**1. वैवाहिक असंतुलन-----**लिंगानुपात असंतुलन भारतीय सामाजिक व्यवस्था 'विवाह' संस्था एवं प्राचीन महान भारतीय सांस्कृतिक विरासत के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रही है।

**2. आर्थिक विकास में बाधा----**महिला हिंसा सामाजिक संरचना के साथ-साथ आर्थिक विकास में भी अवरोधक है। भारतीय जनसंख्या का 48.27% आबादी (महिला जनसंख्या) को यदि संसाधन के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाता तो विकास व संवृद्धि के सारे दावे, उम्मीदें सिर्फ स्वप्न ही बने रहेंगे, केवल 51.73 % लोग (पुरुष आबादी) 100 प्रतिशत विकास नहीं कर सकते, जबकि हमारे पास न तो पर्याप्त पूंजी है और न ही विकसित तकनीक। श्रम शक्ति में महिला सहभागिता (2001) इस प्रकार है----

**स्रोत :** WWW. Cyber journalist Org.in/census/index

कुल कार्यशील जनसंख्या	कुल जनसंख्या में प्रतिशत	कुल श्रमिकों का प्रतिशत
पु.----275463736	59.9	68.44
म.----127048454	25.7	31.56
प्रमुख कार्यशील श्रमिक		प्रमुख श्रम का प्रतिशत
पु.---	45.3	76.80
म.---	14.3	23.20
सीमांत कार्यशील श्रमिक		सीमांत श्रम का प्रतिशत
पु.---	6.60	39.11
म.---	11.0	60.89
अकार्यरत श्रम		अकार्यरत श्रम का प्रतिशत
पु.---	48.1	40.94
म.---	74.3	59.06

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि देश में वर्ष---- 2001 की जनगणना में कुल कार्यशील जनसंख्या में 59.9% पुरुष व 25.7% महिलाएं हैं। अर्थात् 49% महिला आबादी में से मात्र 31.56% ही श्रम शक्ति के रूप में प्रयुक्त हैं। सीमांत कार्यशील तथा अकार्यरत श्रम में महिलाओं का प्रतिशत अधिक, क्रमशः 60.89% व 59.06% है जो इस बात का स्पष्ट संकेतक है कि देश के कुल श्रमिकों के अनुपात में प्रमुख कार्यों में महिलाओं का प्रतिशत निम्न एवं सीमांत व अकार्यरत श्रमिकों के प्रतिशत में महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। जिन कार्यों में आय अधिक व श्रम कम लगता है वहां पुरुषों का प्रतिशत अधिक है जबकि निम्न आय तथा अधिक श्रम वाले कार्यों में महिलाओं की संख्या अधिक है। स्पष्ट है कि महिला श्रम सहभागिता भारत में अत्यंत कम है जिसका अर्थ व्यवस्था व आर्थिक विकास में नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। श्रम बाजार में महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को अधिक वरीयता दी जाती है, उन्हें समान कार्य के बदले कम पारिश्रमिक दिया जाता है। महिला हिंसा में कमी लाकर हम महिला सहभागिता में वृद्धि कर सकते हैं।

**3. वैयक्तिक एवं सामाजिक कुप्रभाव----** महिलाओं के प्रति हिंसा के वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रभाव भी होते हैं। यह महिलाओं के जीवन स्तर में गिरावट लाता है, गतिशीलता में कमी लाता है, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को सीमित करता है तथा बच्चों के पालन-पोषण व सर्वांगीण विकास को भी बाधित करता है। पब्लिक हेल्थ वर्क्स ने भारत में यह रिपोर्ट किया कि बलात्कार के भय से महिलाएं गांव से बाहर दूर यात्राएं करने से परहेज करती हैं, जिससे वे एक निश्चित भौगोलिक सीमा में सीमित होकर रह जाती हैं। परिणामस्वरूप उनकी स्वतंत्रता और सामुदायिक सहभागिता के साथ-साथ आय पर भी बुरा असर पड़ता है।

**4. शिक्षा एवं स्वास्थ्य के स्तर में गिरावट----** अनेक बालिकाएं स्कूलों व कालेजों में नामांकित होने के बावजूद आगे की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती क्योंकि बीच में ही वे स्कूल व कालेज छोड़ देती हैं, जिसके लिए कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में महिलाओं के प्रति असुरक्षा का वातावरण भी उत्तरदायी है। स्कूल छोड़ने वाले छात्रों में लड़कियों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक है। वर्ष 1999--2000 के आंकड़े कहते हैं कि प्रारंभिक स्तर पर ही लगभग 42 प्रतिशत बालिकाएं स्कूल छोड़ देती हैं जिसके परिणामस्वरूप माध्यमिक व उच्च शैक्षिक स्तर में बालिकाओं की भागीदारी में गिरावट आती है। ये ठीक है कि इसका मुख्य कारण लड़कियों के पीछे 'पराया धन' होने की प्रभावी मानसिकता है किंतु फिर भी महिलाओं के प्रति हिंसात्मक एवं असम्मानजनक तथा भोगवादी मानसिकता भी प्रभावी अंशों में प्रभावी है।

शिक्षा के उचित स्तर के अभाव में गरीबी व जागरूकता की कमी अधिक रहती है जिससे महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस स्तर की महिलाएं अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाती हैं तथा इनकी औसत आयु भी तुलनात्मक रूप से कम होती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था महिलाओं को परंपरागत दायित्वों के निर्वहन को प्रेरित करती है किंतु आज का आधुनिक परिवेश महिला को घर की चारदीवारी से निकलकर कुछ कर दिखाने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। आज की महिला हर क्षेत्र में वह चाहे विज्ञान हो, प्रौद्योगिकी व खेल हो या अकादमिक, कला या साहित्य हो, सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं। शिक्षा का विस्तार व उच्च शिक्षा के अवसर आज नारी को नए पंख लगाकर ऊंची उड़ान के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

परंतु हमारे परंपरागत दृष्टिकोण में धीमें परिवर्तन के कारण भारतीय महिला को हर स्तर पर हिंसा का शिकार होना पड़ता है। महिला सशक्तिकरण की बातें तब तक हकीकत में नहीं बदल सकेंगी जब तक हम लोगों की मानसिकता में परिवर्तन नहीं कर पाते।

एक लोकतांत्रिक व समता मूलक समाज की स्थापना के लिए समाज में महिलाओं को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर व समान महत्व देना होगा। महिलाओं की पूर्ण भागीदारी के बिना विकास करने का प्रयास करने वाला समाज उस चिड़िया की तरह है जो केवल एक पंख से उड़ने का प्रयास कर रही है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में----“वह राष्ट्र जो महिलाओं का सम्मान नहीं करता, महान नहीं है और न ही भविष्य में कभी महान हो सकता है।” अतः स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि महिलाओं को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाया जाए जिसके लिए सदियों से समस्याओं से घिरी भारतीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में समानुपातिक भागीदारी आवश्यक है। जिसके लिए महिला हिंसा पर

नियंत्रण करने के लिए अभी व्यापक चिंतन व क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

#### संदर्भ सूचि :

1. शोध पत्र डा. प्रीति पचौरी, छत्रसाल शा.स्ना.महावि. पत्रा, म.प्र.। प्रो. मीता बादल, शासकीय स्ना. महावि. भेल, भोपाल, (म.प्र.)।
2. WWW. Cyber journalist Org.in/Census/index
3. साबिया बेगास----फेमिना वाल्यूम 25 नं.----17 सितम्बर 1984, पृष्ठ----8----22
4. डा. अंसारी (1990) एम.ए., नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ----23
5. ई.पी.डब्लू, वुमेन्स राइट्स, टू लैंड एण्ड एसेट्स, नित्या राव, पेज----4704, अक्टूबर, 29----नवम्बर, 04----2005



# आम आदमी पुलिस से मदद तो चाहता है किंतु स्वयं पुलिस की मदद नहीं करना चाहता

डा. आर.के. सक्सैना

डा. गीता सक्सैना

गीता भवन गरगज कालोनी बहोड़ापुर, लश्कर,  
ग्वालियर--474012 (म.प्र.)

कोई भी समाज अपराधों से मुक्त नहीं है। जहां अपराध है वहां पुलिस की जरूरत है। सामाजिक समस्याओं में अपराधों की अहं भूमिका है। अपराधों में बाल अपराध, अपराध, मद्यपान ड्रग्स, चोरी, श्वेतपोश अपराध प्रमुख है। महिला अपराधों में वैश्यावृत्ति, चोरी, ड्रग्स, डकैती, बलात्कार आदि अपराध मुख्य है। समाज को स्वस्थ बनाए रखने में इन अपराधों के निराकरण के लिए प्रत्येक नागरिक जिम्मेदार है। यदि नागरिक समय रहते अपराधियों की सूचना पुलिस को दे दे, तथा अपराध इनवेस्टीगेशन के समय पुलिस की मदद सहज रूप से करने लगे तो अपराधों को रोकना कठिन नहीं है किंतु ऐसा नहीं होता। सरे आम बीच बाजार में दिन दहाड़े कत्ल हो जाता है, सब लोग देखते हैं कई लोग उनमें से अपराधियों को पहचानते भी है किंतु कोई पुलिस को उनके बारे में नहीं बताता। अपराधी अपराध करके न केवल भागने में सफल हो जाते हैं अपितु पुलिस कई दिनों तक अंधेरे में तीर चलाती रहती है। इधर-उधर भटकती रहती है। मुश्किल से पुलिस को अपराधियों का कुछ सुराग मिलता है तब वह अपन जांच की दिशा तय करती है।

माता-पिता अपने अपराधी बच्चों को संरक्षण देते

हैं वे नहीं जानते कि वे उन्हें मौत के मुंह में ढकेल रहे हैं। गांव व पड़ोस के लोग भी अपराधियों को संरक्षण देने से नहीं चूकते यहां तक पुलिस जब ऐसे अपराधियों को गिरफ्तार करने जाती है तो पुलिस पार्टी पर पथराव कर देते हैं। घर लेते हैं इतने में अपराधी भागने में सफल हो जाता है। ग्वालियर में पेट्रोल पम्प पर लूट करने वाले अपराधियों का जब महिला सी.एस.पी. ने पीछा किया तो अपराधियों के घर वालों व गांव वालों ने पुलिस पार्टी को गांव में न केवल घर लिया बल्कि सी.एस.पी. के ड्राइवर से उनकी सर्विस रिवाल्वर छीन ली। तमाम प्रयासों के बाद कई दिन बाद रिवाल्वर बरामद हो सकी। यहां प्रश्न यह है कि अपराधियों के घर वालों व गांव वालों का यह कृत्य कहां तक उचित था। यदि उनके गांव व घर में डकैत डकैती डालते हैं और पुलिस मदद करने नहीं आती तब उन्हें कैसा लगता तब वे पुलिस को कोसते। जब कि यहां स्वयं अपराधियों को संरक्षण दे रहे हैं यह दोहरा मानदंड लोगों को बदलना चाहिए। यहां शोधार्थी की सरल सहज परिकल्पना है कि “**आम आदमी स्वेच्छा से पुलिस की मदद करना नहीं चाहता।**” शोधार्थी की यह परिकल्पना कई घटनाओं व दुर्घटनाओं के आधार पर सृजित हुई। ग्वालियर नगर में विगत वर्षों में बैंक से पैसा निकाल कर लोगों को जाते देखा। सूटकेस कार की पिछली सीट पर रखकर कार चलाकर जाते समय जब कार इंदरभेज थाना क्षेत्र में जाम में आकर रुकी तो पीछे का कांच तोड़कर अपराधी सूटकेस ले गए। स्कूटर की डिक्की से बैग निकालने की कई घटनाएं हुई। रमानी हत्याकांड सरे राह हुआ। इन सब घटनाओं में पुलिस के पास कोई नहीं आया। पुलिस को गवाह ढूंढने में परेशानी हुई। अभी बिहार के कुछ अपराधी ग्वालियर में पकड़े गए तब उन्होंने कबूल किया कि किस प्रकार कांच तोड़कर व डिक्की खोल कर वे पैसा निकाल लेते थे तथा पैसा लेकर सीधे रेलवे स्टेशन वहां से आगरा

तथा आगरा से पटना आदि स्थानों को चले जाते थे पुलिस उन्हें ग्वालियर में तलाशती रहती थी। प्रश्न यह है कि जो लोग उन्हें यह अपराध करते हुए देखते थे या जिन्होंने अपराध होते हुए देखा वे अपने नागरिक कर्तव्यों का पालन करते हुए यदि शोर कर देते या पुलिस को त्वरित मोबाइल या फोन से सूचित कर देते अथवा उन अपराधियों का हुलिया उनके द्वारा पहने गए कपड़े, उनके द्वारा उपयोग की गई गाड़ी का नम्बर तथा उनके भागने की दिशा के बारे में बता देते तो पुलिस को अपराधियों तक पहुंचने में अधिक विलम्ब नहीं होता। किंतु ऐसा नहीं हुआ। इसी आधार पर सर्वेक्षण के दौरान चयनित न्यायदशों से सीधा प्रश्न किया गया कि क्या आम आदमी स्वेच्छा से पुलिस की मदद करता है? सर्वेक्षण के दौरान जो तथ्य प्राप्त हुए वे तालिकाबद्ध कर यहां प्रस्तुत हैं।

#### तालिका क्रमांक----1

##### स्वेच्छा से पुलिस की मदद करने संबंधी :

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	307	51.17
तटस्थ	116	19.33
असहमत	168	28.00
उत्तर अप्राप्त	09	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि आधे से अधिक अर्थात् 51.17 प्रतिशत (307) चयनित न्यायदर्श यह मत व्यक्त करते हैं कि आम आदमी स्वेच्छा से पुलिस की मदद करना चाहता है जब कि 28.00 प्रतिशत (168) उत्तरदाता यह मत व्यक्त करते हैं कि आम आदमी स्वेच्छा से पुलिस की मदद नहीं करना चाहता। 19.33 प्रतिशत (116) न्यायदर्श तटस्थ भाव में हैं वे कोई स्पष्ट अभिमत व्यक्त नहीं करते।

यद्यपि तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि आम आदमी स्वेच्छा से पुलिस की मदद करना चाहता है किंतु यथार्थ

जगत में हम जो देखते हैं वह सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। फिर भी कई प्रकरणों में हम देखते हैं कि लोग पुलिस को अपराधियों की सूचना दे देते हैं। अपराधियों की सूचना पुलिस को न देने की एक मुख्य वजह जो उत्तरदाता बताते हैं वह है लंबी चलने वाली अंतहीन न्यायालयीन प्रक्रिया तथा अपराधियों से गवाहों की कोई सुरक्षा न होना।

आम आदमी पुलिस से मदद तो चाहता है किंतु स्वयं पुलिस की मदद नहीं करना चाहता व्यावहारिक जीवन में यह आम तथ्य है। जैसे ही किसी व्यक्ति के साथ कोई घटना घटित होती है वह तुरंत मदद के लिए पुलिस के पास जाता है। एफ.आई.आर. दर्ज कराता है तथा पुलिस से यह अपेक्षा करता है कि पुलिस तत्काल संबंधित अपराधियों को गिरफ्तार करें उन्हें दंड दिलाए। किंतु जब उसी व्यक्ति से कहा जाता है कि अमुक घटना के समय आप मौकाये वारदात पर थे आपने क्या देखा, जो देखा वह कोर्ट में जस का तस बयान दे दे। तो वह व्यक्ति बगले झांकने लगता है। गवाही देने को तैयार नहीं होता। यह परिकल्पना कितनी सच है इस संबंध में तथ्य संकलित किए गए जो तथ्य प्राप्त हुए वे तालिकाबद्ध कर यहां प्रस्तुत हैं।

#### तालिका क्रमांक.-2

हम पुलिस से मदद तो चाहते हैं किंतु पुलिस की मदद नहीं करते :

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	252	42.00
तटस्थ	115	19.17
असहमत	224	37.33
उत्तर अप्राप्त	09	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 42 प्रतिशत (252) उत्तरदाता शोधार्थी के इस मत से सहमत हैं कि लोग पुलिस से मदद तो चाहते

हैं किंतु पुलिस की मदद नहीं करते। 37.33 प्रतिशत (224) इस तथ्य के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। 19.17 प्रतिशत (115) उत्तरदाता तटस्थ मुद्रा में है वह अपना स्पष्ट मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं। 1.50 प्रतिशत (09) उत्तरदाताओं से उत्तर प्राप्त नहीं हुए।

अतः निष्कर्ष निकलता है कि आम आदमी पुलिस से मदद तो चाहता है किंतु पुलिस की मदद नहीं करना चाहता।

आम आदमी पुलिस की मदद क्यों नहीं करना चाहता यह जानने का प्रयास किया गया। इस संबंध में शोधार्थी की परिकल्पना थी कि आम आदमी इसलिए पुलिस की मदद नहीं करना चाहता क्योंकि वह पुलिस की उलझन से दूर रहना चाहता है। वक्त बे वक्त पुलिस द्वारा गवाह को बुलाना, आने पर देर तक थाने में या न्यायालय में बैठाकर रखना, उसके साथ मधुर व्यवहार न करना आदि कारण हैं। जिनके कारण आम आदमी पुलिस की उलझन से दूर रहना चाहता है। ग्वालियर के कोतवाली थाना क्षेत्र स्थित एक शोरूम से लाखों के मोबाइल चोरी हुए किंतु शोरूम के मालिक ने थाने में रिपोर्ट तक नहीं की कारण पूछने पर उन्होंने बताया कौन पुलिस की उलझन में पड़े। एक-दो लाख के मोबाइल गए अब पुलिस व कोर्ट के चक्कर लगाओ उन्होंने अपनी दुकान में मोबाइल फोन रखना बंद कर दिया। इस प्रकार के अनेक प्रकरण में लोग पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने तक नहीं जाते कारण यह कि पहले तो पुलिस रिपोर्ट लिखने में आनाकानी करेगी फिर रिपोर्ट लिख भी गई तो बार-बार फरियादी को तथा उसके घर या प्रतिष्ठान के सदस्यों के बयान लेने के लिए परेशान करेगी। इन सबसे बचने के लिए ही सामान्य रूप से आम आदमी पुलिस की उलझन से दूर रहना चाहता है। इस संबंध में प्राप्त तथ्य निम्नवत है---

**तालिका क्रमांक-3**

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	430	71.67
तटस्थ	65	10.83
असहमत	96	16.00
उत्तर अप्राप्त	09	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि लगभग तीन चौथाई 71.67 प्रतिशत (430) उत्तरदाता यह स्पष्ट मत व्यक्त करते हैं कि आम आदमी पुलिस की उलझन से दूर रहना चाहता है। मात्र 16 प्रतिशत (96) उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत नहीं है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आम आदमी पुलिस की उलझन से दूर रहना चाहता है। इसीलिए पुलिस को गवाह आदि नहीं मिलते।

आज समाज में अशांति व असुरक्षा बढ़ी है। जब भी शांति व्यवस्था खतरे में पड़ती है या समाज में असुरक्षा बढ़ती है लोग पुलिस की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते हैं। कारण यह कि पुलिस प्राचीनकाल से ही समाज को सुरक्षा प्रदान करती रही है। “**आम नागरिक भी समाज में सुरक्षा के लिए पुलिस की तरफ देखता है।**” समाज में तीव्रगति से हो रहे सामाजिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप तनाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। बेरोजगारी व त्वरित पैसा कमाने की प्रवृत्ति ने नवयुवकों को अपराध की ओर धकेला है। उच्च व तकनीकी शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत छात्र भी लूट-पाट में लिप्त पाए गए हैं। पड़ोसी पर भी लोगों को विश्वास नहीं रहा है। ऐसे में जनता की अपेक्षाएं पुलिस से बढ़ती जा रही है। यहां पर शोधार्थी की सरल-सहज परिकल्पना है कि “**आम आदमी चाहता है कि थाना/ पुलिस चौकी उसके मोहल्ले में हो।**” इसके पीछे शायद उसका यह विश्वास है कि अपराधी पुलिस के भय से

थाना या चौकी के आस-पास वारदात नहीं करेंगे और उनका घर सुरक्षित रहेगा। इस संबंध में प्राप्त तथ्य निम्नवत है?

#### तालिका क्रमांक----4

##### थाना या चौकी मोहल्ले में होने संबंधी

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	333	55.50
तटस्थ	79	13.17
असहमत	178	29.67
उत्तर अप्राप्त	10	1.66
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका स्पष्ट करती है कि आधे से अधिक 55.50 प्रतिशत (333) चयनित न्यादर्श चाहते हैं कि थाना/चौकी उनके मोहल्ले में हो। 29.67 प्रतिशत (178) न्यादर्श इस संबंध में असहमति व्यक्त करते हैं तथा 13.17 प्रतिशत (79) न्यादर्श तटस्थ भाव में है।

अतः स्पष्ट है कि लोगों का आज भी पुलिस पर पूर्ण विश्वास है तथा अधिकांश लोग पुलिस की ओर सुरक्षा के लिए आशा भरी निगाहों से देखते हैं।

समाज पर आज समूहवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद हावी होता जा रहा है। स्वार्थ-परता बढ़ रही है। सभी लोग अपने बारे में सोच रहे हैं। अर्थ लोलुपता बढ़ रही है। भौतिक वादी प्रवृत्ति बढ़ने से लोगों का धन के प्रति मोह बढ़ा है। आज आवश्यकताएं इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की संतुष्टि हो पाना कठिन है, अतः लोग अनेक तरीकों से धन कमाने की सोचते हैं। समाज का प्रतिरूप ही पुलिस है। पुलिस में भी समाज से ही लोग आते हैं। अस्तु जो प्रवृत्तियां समाज के अन्य लोगों में हैं वही प्रवृत्तियां पुलिस में भी आ जाती हैं। शोधार्थी की सरल उपकल्पना है कि “पुलिस में कर्तव्य के स्थान पर स्वार्थ भावना प्रबल होती जा रही है।” यह परिकल्पना सत्यता

के कितने निकट है इस तथ्य का परीक्षण करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया। प्राप्त तथ्य निम्नवत है--

#### तालिका क्रमांक----5

##### पुलिस में कर्तव्य के स्थान पर स्वार्थ भावना की प्रबलता :

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	406	67.67
तटस्थ	79	13.17
असहमत	106	17.66
उत्तर अप्राप्त	09	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है लगभग दो तिहाई 67.67 प्रतिशत (406) उत्तरदाता इस तथ्य के प्रति सहमति व्यक्त करते हैं कि पुलिस में कर्तव्य के स्थान पर स्वार्थ की भावना प्रबल होती जा रही है। 17.66 प्रतिशत (106) इस तथ्य से सहमत नहीं है। इनका मत है कि पुलिस अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ है। 13.17 प्रतिशत (79) उत्तरदाता तटस्थ भाव में है।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश न्यादर्श पुलिस में बढ़ती स्वार्थ प्रवृत्ति से चिंतित है।

जस्टिस ए.एन. मुल्ला ने “पुलिस को अपराधियों का संगठित तंत्र” कहा था तब यह बहस आम हो गई थी कि क्या पुलिस के कारण अपराध बढ़ते हैं या पुलिस अपराधियों को संरक्षण प्रदान करती है। जैसे-जैसे पुलिस बल में वृद्धि हो रही है अपराधियों की संख्या भी बढ़ रही है क्या इन दोनों के मध्य कोई सकारात्मक या नकारात्मक सह संबंध है? इसका एक सीधा सरल सा उत्तर तो यह है कि जब थाना या चौकी घर या मोहल्ले के पास होगा तो छोटी से छोटी घटना की रिपोर्ट भी आमजन पुलिस थाने में दर्ज कराने पहुंच जाएगा किंतु यदि थाना/चौकी 20 कि.मी. दूर होगा तो

गंभीर घटना होने पर ही व्यक्ति रिपोर्ट कराने जाएगा साधारण अपराध तो स्थानीय स्तर पर ही निपटा लिए जाएंगे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नगर तथा ग्रामीण थानों में पंजीबद्ध अपराध संख्या से देखा जा सकता है। नगरों की तुलना में ग्रामीण थानों में कम अपराध पंजीबद्ध होते हैं उसका कारण थाना/चौकी या घर/गांव से दूर होना ही है।

पुलिस द्वारा अपराध कम किए गए यह रिपोर्ट तो हर बार आती है किंतु अभी तक ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं आई कि पुलिस से परेशान होकर कितने नए लोग अपराधी बने। पुलिस द्वारा कितने पुराने अपराधियों को संरक्षण दिया गया आदि। पुलिस पर यह आम आरोप है कि पुलिस अपराधी तत्वों को संरक्षण देती है। इस संबंध में प्राप्त तथ्य निम्नवत् हैं :

#### तालिका क्रमांक-6

##### पुलिस द्वारा अपराधी तत्वों को संरक्षण दिया जाना

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	350	58.33
तटस्थ	118	19.67
असहमत	123	20.50
उत्तर अप्राप्त	19	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि आधे से अधिक 58.33 (350) प्रतिशत न्यादर्श मत व्यक्त करते हैं कि पुलिस द्वारा अपराधी तत्वों को संरक्षण दिया जाता है। मात्र 20.50 प्रतिशत (123) उत्तरदाता इस तथ्य से सहमत नहीं है। इतनी बड़ी संख्या में उत्तरदाताओं का इस तथ्य से सहमत होना चिंता का विषय है।

सरदार पटेल ने कहा था कि “संदेह और नफरत पुलिस को दान में मिली है। यही कारण है कि आज पुलिस के लिए आदर का भाव नहीं है। किंतु आज जब देश स्वतंत्र है, जनता और पुलिस दोनों को ही

अपना दृष्टिकोण बदल देना चाहिए।” सरदार पटेल के उक्त कथन के संदर्भ में जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि आज स्वतंत्रता के 58 वर्ष बाद भी आमजन के मन से पुलिस के प्रति कटुता तथा कलुषता कम नहीं हुई है उल्टी बढ़ी है। पुलिस पर भ्रष्टाचार तथा कदाचार के आरोप लगाए जा रहे हैं। यद्यपि आज राजनेताओं से लेकर नौकरशाह तक समस्त भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे हुए हैं किंतु फिर भी पुलिस का भ्रष्टाचार ही सबको अधिक दिखलाई देता है। पुलिस पर यह सहज आरोप लगा दिया जाता है कि पुलिस भ्रष्टाचार के कारण कानून व्यवस्था स्थापित करने के अपने मूल लक्ष्य से भटक रही है। इस संबंध में तथ्य संकलित किए गए प्राप्त तथ्य निम्नवित हैं :

#### तालिका क्रमांक-7

##### पुलिस में भ्रष्टाचार तथा कानून व्यवस्था की स्थिति :

अभिमत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	364	60.67
तटस्थ	104	19.33
असहमत	123	20.50
उत्तर अप्राप्त	09	1.50
योग	600	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि आधे से अधिक अर्थात् 60.67 प्रतिशत (364) चयनित न्यादर्श इस संबंध में स्पष्ट सहमति व्यक्त करते हैं कि पुलिस में भ्रष्टाचार अधिक है इस कारण वह कानून व्यवस्था स्थापित करने पर उतना ध्यान नहीं देती। कानून व्यवस्था का लक्ष्य गौड़ हो गया है। 20.50 प्रतिशत (123) न्यादर्श इस तथ्य से सहमत नहीं है। उनका मत है कि यह तो पुलिस पर मिथ्या आरोप है। पुलिस का प्रत्यक्ष संबंध जनता से होता है अतः पुलिस के द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक कार्य जनता की नजर में रहता है फिर पुलिस एक वर्दी धारी संगठन है अतः



उसके ऊपर सभी की नजर रहती है उसे सौ लोगों में भी अलग से पहचान लिया जाता है भ्रष्टाचार पुलिस से कहीं अधिक आयकर, रजिस्ट्रार कार्यालय, रेवेन्यू तथा नेताओं के यहां होता है किंतु वह किसी को दिखलाई नहीं देता। चयनित न्यादशों का पांचवा हिस्सा इसी प्रकार का मत व्यक्त करता है। चयनित न्यादशों में से 19.33 प्रतिशत (104) न्यादर्श तटस्थ है। वह न पक्ष में न ही विपक्ष में अपना मत व्यक्त करते हैं।

किंतु आधे से अधिक लगभग दो तिहाई चयनित न्यादशों द्वारा तथ्य के पक्ष में सहमति व्यक्त करना यह स्पष्ट करता है कि पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार या कदाचार के प्रति जनता सचेष्ट है। अभी हाल ही में (नवम्बर 06) ग्वालियर की एक घटना का उल्लेख पुलिस के कदाचार के संबंध में करना उल्लेखनीय है क्योंकि ऐसी घटनाएं पुलिस को कलंकित करती है। एक राहगीर

अपनी पत्नी के साथ मोटरसाइकिल से रसेकोर्स रोड से जा रहा था अचानक उसकी पत्नी के पेट में तीव्र पीड़ा होने लगी। जब पीड़ा असहनीय हो गई और उसका बाइक पर बैठकर चलना संभव नहीं रहा तो संबंधित महिला के पति ने गोले के मंदिर थाना क्षेत्र की पीसीआर वैन क्र. 5 से मदद मांगी। उक्त वैन में महिला को लिटा दिया गया वैन के पीछे-पीछे उसका पति अपनी मोटर साइकिल से चला। वैन में पीड़ित महिला के साथ वैन के सिपाही द्वारा छेड़-छाड़ की गई जिसे देखकर महिला के पति द्वारा शोर मचाया गया तथा वैन रुकवाई गई। इस प्रकार की घटनाएं भले ही एक कर्मी द्वारा की जाए किंतु संपूर्ण पुलिस बल को कलंकित कर जाती है। जो चिंता का विषय है।

#### संदर्भ :

1. श्रीवास्तव डा. प्रतिभा — “अपराधों के निराकरण में समाज वैज्ञानिकों का योगदान”, शोध प्रपत्र, XVIIIth आल इंडिया कांफ्रेंस ऑफ इंडियन सोशल साइंस एसोसिएशन, टी-आर कालेज रीवां, 16-18 मार्च, 1998।
2. शर्मा, डॉ. श्रीमती अनुपम — “पुलिस कर्मियों में नैतिक मूल्यों का हास-विश्लेषणात्मक अध्ययन”, पुलिस विज्ञान, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, जुलाई-सितम्बर 2005, पृष्ठ 53.



# पुलिस कानून और न्याय

डा. दशमंत दास पटेल

श्रीमती राजमति पटेल

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, हवाबाग  
महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पुलिस की छवि को सुधारने की मांग लंबे अरसे से उठती रही है, इस संबंध में जो भी सुझाव आते हैं, उनमें प्रमुखता से यही बात कही जाती है कि वह ब्रिटिश शासन में बनी छवि से न सिर्फ मुक्त हो बल्कि आम जनता के सच्चे दोस्त, हमदर्द के रूप में साथ दे। हाल ही में प्रदेश पुलिस प्रमुखों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री ने भी इस बारे में गंभीरता दिखलाई थी। केंद्र और राज्य सरकारें तो सुधार के प्रति कटिबद्ध है ही, जनता भी पुलिस को सच्चे सेवक के रूप में देखना चाहती है। अब पुलिस महकमे के अंदर भी सुधार की आवाज तेज हुई है। कोशिश होनी चाहिए कि पुलिस की छवि लोक कल्याणकारी बने और अपराधी को सजा जरूर मिले।

भारतीय पुलिस का अतीत बहुत गौरवमय नहीं रहा है। सन् 1855 में टार्चर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में नृशंसता तथा भ्रष्टाचार का जो चित्र प्रस्तुत किया था, उसे देखकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने पुलिस का पुनर्गठन करने का निर्णय ले लिया था। अंततः ब्रिटिश सरकार ने सन् 1860 में पुलिस कमीशन बिठाया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर सन् 1861 में ब्रिटिश संसद ने पुलिस एक्ट पारित किया। उसके अनुसार भारत में पुलिस का आयरलैंड की पुलिस की तर्ज पर पुनर्गठन किया गया, पुलिस का अधीक्षण हिंदुस्तानी अधिकारियों से लेकर अंग्रेज अधिकारियों के हाथों में दे दिया गया और यातना देने का निषेध कर दिया गया। सन् 1861 में ही भारतीय दंड संहिता एवं दंड प्रक्रिया संहिता भी पारित किए गए, टार्चर कमीशन

की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए लार्ड मैकाले ने इन कानूनों के जरिये इस बात का प्रयास किया कि (क) पुलिस को गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को हिरासत में रखने का कम से कम समय मिले तथा (ख) किसी व्यक्ति से यातना देकर प्राप्त किए गए कथन साक्ष्य में कोई मूल्य न रहे, ताकि पुलिस संदेही से अपराध कबूल कराने के बजाए दूसरा साक्ष्य इकट्ठा करने पर ध्यान दे। इस तरह दंड प्रक्रिया संहिता में कहा गया कि किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाए (वर्तमान में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 में यह प्रावधान है)। पुलिस अधिकारियों को पूछताछ के दौरान किसी संदेही को किसी भी प्रकार से डराने-धमकाने या प्रलोभन देने आदि का निषेध किया गया (वर्तमान में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 163 एवं साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 में यह प्रावधान है)। दंड प्रक्रिया संहिता में यह भी स्पष्ट कहा गया कि पुलिस को दिए गए इकबालिया बयान को किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य में नहीं लिया जाएगा। (वर्तमान में साक्ष्य अधिनियम के धारा-25 में यह प्रावधान है। धारा---27 में अभी यह भी प्रावधान है कि इकबालिया बयान के उस हिस्से को साक्ष्य में लिया जा सकता है जिसके आधार पर किसी तथ्य का पता लगा हो)। भारतीय दंड संहिता में इकबालिया बयान या अन्य कोई जानकारी निकलवाने के लिए चोट पहुंचाने वाले पुलिस अधिकारी को बड़े कड़े दंड का प्रावधान किया गया। (वर्तमान में धारा-330 में यह प्रावधान है)।

जिन अधिकारियों ने इन सुधारों के बाद तथा 20वीं सदी के शुरू तक भारतीय पुलिस में कार्य किया और अपने अनुभवों के बारे में लिखा है, उनके लेखन से स्पष्ट है कि इन सुधारों से पुलिस के सामने कुछ व्यावहारिक कठिनाईयां आईं। एक कठिनाई यह थी कि (और अब भी है) कि जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध

संदेहास्पद परिस्थितियां तो हों किंतु ठोस सबूत न हों तो क्या किया जाए? यदि विवेचक ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करे तो उसे मजिस्ट्रेट के फटकार मिलने तथा संदेही को छोड़ दिए जाने की संभावना अधिक थी। पर उसे गिरफ्तार न किया जाए और विशेषकर यदि वह व्यक्ति संदेह जाहिर होने के बाद फरार हो जाए तो जनता यहीं मानती है कि विवेचक ने रिश्वत लेकर संदेही को भाग जाने का मौका दिया और संभवतः वरिष्ठ अधिकारी भी इसे विवेचक की गलती मानते। साक्ष्य अधिनियम के अनुसार (वर्तमान धारा-8 दृष्टांत ज) फरार होने का तथ्य साक्ष्य के सुसंगत है लेकिन अमूमन न्यायालय इस पर विशेष ध्यान नहीं देते और यदि पुनः पकड़े जाने पर संदेही कहे कि वह तो पुलिस की मार से डर से भाग गया था तो इसे आसानी से मान लिया जाता था (और है)। इसलिए अपराधी को संदेहास्पद परिस्थितियों के आधार पर न पकड़ने पर विवेचक को हर तरह से नुकसान ही दिखता था। एक अन्य कठिनाई पूछताछ की तैयारी से संबंधित थी (जो अब भी है)। मारपीट, फुसलाने आदि का निषेध हो जाने पर विवेचक को अपराधों का पता करने के लिए पूछताछ की कला में विशेष दक्षता की आवश्यकता तो होती है, वरन् सफल पूछताछ के लिए विवेचक को संदेही की पृष्ठभूमि भी मालूम होनी चाहिए ताकि वह उसका मनोविज्ञान समझ सके, किंतु विवेचन अधिकारी के पास संदेहियों की पृष्ठभूमि का पता लगाने के लिए संसाधनों की कमी थी, संदेही ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर सामंजस्य की कमी थी, संदेही से मनोवैज्ञानिक स्तर पर सामंजस्य बिठाकर उसे सच बताने के लिए तैयार करने में जितना समय लग जाता, उतने समय के लिए केवल संदेह के आधार पर पुलिस रिमांड मिलना असंभव था (और अब भी है) और अवसर अन्य ड्यूटी के चलते विवेचक स्वयं को इस तरह की पूछताछ के लिए समय नहीं होता था इसलिए कच्चे अपराधियों

को छोड़कर अन्य से सफल पूछताछ करना बहुत कठिन हो गया और नकबजनी, डकैती, अंधा कत्ल जैसे अपराधों का जिनका----पता अमूमन संदेहियों से सफल पूछताछ के आधार पर ही लगाया जा सकता है----पता लगाना पुलिस के लिए टेढ़ी खीर बन गया।

### अंग्रेजी की झूठी धारा हिंदुस्तानी झूठे

अंग्रेजों की एक धारा यह थी कि हिंदुस्तानी झूठ से परहेज नहीं करते, कई अंग्रेज जनता का अनपढ़ होना और उन्हें सामाजिक बोध न होना इसका कारण मानते थे। एक अधिकारी ने लिखा है कि हिंदुस्तानी अंग्रेजों के सामने झूठ बोलने का पाप नहीं मानते। कुछ अंग्रेजों का मानना था कि हिंदुस्तानियों की नस्ल ही ऐसी है। जो भी हो, जहां तक कानूनों का सवाल है, अंग्रेजों ने झूठ को दंडित करने का विशेष प्रयास नहीं किया इस तरह यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान किया गया था कि किसी भी व्यक्ति को विवेचना अधिकारी द्वारा पूछे गए सभी सवालों का उत्तर देना होगा---सिवाय उनके जिनके कारण वह किसी तरह से दोषी बनता हो, मगर जैसा कि कलकत्ता हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने अपने एक फैसले में बताया, वह उत्तर में सच ही बोले, ऐसा आवश्यक नहीं था। काफी विवाद के बाद सन 1882 में दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे सवालों के सही-सही उत्तर देने होंगे (अब धारा 161(2) में यह प्रावधान है) किंतु इस आशंका से कि कहीं पुलिस अधिकारी इस प्रावधान का डर बताकर गवाह को न्यायालय में भी वही कथन देने को बाध्य न कर दें जो पुलिस अधिकारी ने विवेचना के समय उसके मुंह में डाल दिया था। उन्होंने एक और प्रावधान कर दिया कि विवेचना के दौरान गवाहों के जो बयान पुलिस दर्ज करती है उस पर गवाहों के हस्ताक्षर नहीं लिए जाएंगे। (अब धारा----162 (1) में

यह प्रावधान है)। यह कहना तो असंभव ही है कि इस प्रावधान के बल पर कितने गवाहों ने पुलिस की अनदेखी करके न्यायालय में सच-सच बयान दिए, किंतु इसमें कोई शक नहीं है कि इस प्रावधान से गवाहों के लिए विवेचना के दौरान पुलिस को दिए गए अपने बयानों से मुकरना बहुत आसान हो गया। इसी प्रावधान की बदौलत पुलिस से झूठ बोलने पर या विवेचना को गुमराह करने पर भी कभी किसी को सजा नहीं हुई (और न कभी हो सकेगी)।

### झूठी गवाह बनी पुलिस के लिए सिरदर्द

न्यायाधीशों के रवैए से भी पुलिस की कठिनाइयां बढ़ी। न्यायिक कार्रवाही के दौरान झूठी गवाही देना भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत एक गंभीर अपराध बनाया गया था। (वर्तमान धारा 193) किंतु अनपढ़ और नासमझ व्यक्तियों को बेकार की परेशानी न हो इस लिहाज से दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान कर दिया गया था। (वर्तमान धारा-195(3)) झूठी गवाही देने वाले पर मुकदमा उसी न्यायधीश की शिकायत पर चलाया जा सकेगा। जिसके सामने यह झूठी गवाही दी गई। पर न्यायाधीशगण किसी दूसरे न्यायधीश के सामने शिकायत करने के बिल्कुल इच्छुक नहीं थे और इसलिए झूठी गवाही देने की शिकायतों की संख्या नगण्य ही रही। (कुछ वर्ष पहले न्यायमूर्ति अहमदी ने भारत के मुख्य न्यायधीश के पद से निवृत्त होते समय एक विदाई समारोह में कहा था कि उन्होंने अपने पूरे कैरियर में झूठी गवाही देने संबंधी एक भी प्रकरण नहीं देखा)। जब यह जाहिर हो गया कि झूठी गवाही देने पर कोई सजा नहीं होती तो अपराधियों के लिए पैसों के बल पर या जाति-बिरादरी का वास्ता देकर गवाहों को फोड़ लेना और भी आसान हो गया क्योंकि वह गवाह से न सिर्फ यह कह सकते थे कि दंड प्रक्रिया संहिता ने उन्हें बयान कसने की छूट दे रखी है बल्कि यह भी

कह सकते थे कि अगर तुम्हारी गवाही अंततः झूठी साबित हो गई तब भी तुम्हें सजा नहीं भुगतनी पड़ेगी।

इसके अलावा जैसा सर एडवर्ड ने अपनी पुस्तक में लिखा (My 30 years in India, London, 1909, Pg. 192) गवाह अधिकतर अनपढ़ और नासमझ होते हैं और किसी भी घटना का बिल्कुल सही-सही वर्णन करने की उनकी आदत या काबिलियत नहीं होती। इसलिए वह अक्सर अपने मन से ऐसे बातें जोड़ देते हैं जिनसे उनकी समझ में माजरा क्या था, यह साफ हो जाए फिर घटना के बाद लंबा समय गुजर जाने के कारण भी वह गवाही देते समय भूल बैठते हैं और बयान पक्ष के वकील के लिए इन सबको उधेड़ कर रख देना बहुत मुश्किल नहीं होता। ऐसे में अक्सर न्यायाधीश छोटे-मोटे विरोधाभासों के कारण हत्या और डकैती जैसे गंभीर प्रकरणों में भी उन अपराधियों को दोष मुक्त कर देते हैं जिनके बारे में वह स्वयं मन ही मन जानते हैं कि वह दोषी है इसका (एक ज्वलंत उदाहरण बहुचर्चित प्रियदर्शनी मट्टू हत्याकांड है जिसका फैसला देते समय सेशन जज ने कहा था कि वह अपने मन से तो आरोपी को दोषी मानते हैं पर साक्ष्य की कमजोरियों के कारण उसे दोष मुक्त कर रहे हैं)। न्यायाधीशों के इस रुख के कारण अदालत से बरी होने वाले अपराधियों की संख्या बढ़ी। जनता के लोग तो पुलिस विवेचना में और दूरस्थ कोर्ट में गवाही देने में होने वाली असुविधाओं से तथा बचाव पक्ष के वकील की जिरह से पहले ही बेजार थे। जब अपराधियों के कोर्ट से छूटकर वापिस आने और गवाहों से बदले लेने की संभावना बढ़ गई तब वह विवेचना के दौरान सामने आने से और भी कतराने लगे। जाहिर है कि जब वास्तविक गवाह पीछे रहने लगे तब तथाकथित मुखबिरों का बोलबाला हो गया और पुलिस के लिए वास्तविक अपराधियों का पता लगाना या विवेचना के

दौरान निर्दोष व्यक्तियों को शक के दायरे के बाहर रखना और भी मुश्किल हो गया।

### नजरकैद का विकल्प खोजा

संभव है कि अपराधियों के प्रति आक्रोश के कारण या शायद जनता की धिक्कार से और वरिष्ठ अधिकारियों की फटकार से बचने के लिए पुलिस कर्मियों ने कालांतर में इन कठिनाईयों से निबटने के लिए अपने ढंग से उपाय ढूँढ़ निकाले, संदेही व्यक्ति को ठोस सबूत मिलने तक गिरफ्तार करें या न करें इस समस्या से निपटने के लिए नजर कैद का तरीका निकाला गया जिसमें संदेही को बिना औपचारिक तौर पर गिरफ्तार किए थाने पर बैठा लिया जाता है ताकि संदेही कहने को तो हिरासत में नहीं होता, लेकिन वह कहीं आने-जाने के लिए स्वतंत्र भी नहीं होता। कुछ अन्य ने जो पकड़े जाने पर कड़ी सजा भुगतने को तैयार थे, पुराने तरीकों से ही पता-साजी करने की ठानी, मगर इस एहतियात के साथ कि संदेहियों को यातना दी गई।

यह आसानी से साबित नहीं हो सके, इस तरह हिक्मत अमली की शुरुआत हुई जो चोरी-छिपे यातना देकर, डरा-फुसला कर पूछताछ करने का ही दूसरा नाम था।

निःसंदेह, जिन पुलिस वालों ने हिक्मत की और सफल भी रहे। उन्हें जनता ने (जो हमेशा से अपराधियों से सख्ती किए जाने के पक्ष में रही है) सिर आंखों पर उठाया और अपने अधिकारियों से इनाम भी मिले जबकि वह लोग जो कानून के दायरे में काम करते रहे, उन्हें इज्जत तो मिली मगर ना तो वह जनता की नजरों में चढ़े और ना अपने अधिकारियों की और चूंकि इन तरकीबों से घूसखोरी का रास्ता साफ हो जाता था। (जिसका पुराना रिवाज भी था) इसीलिए इनका आकर्षण दुगना हो गया।

**पुलिस को बेईमान बताने से नहीं चूकती जनता**

इस स्थिति में अधीक्षकगण की भूमिका निर्णायक हो गई। अधिकतर अंग्रेज अधीक्षक यह मानते थे कि पुलिस को सही रास्ते पर रखने तथा ऐसी सभी बुराईयों को कुचलने से ही उनका अस्तित्व सार्थक बनता था। लेकिन यह काम कठिन था। पहले तो यूं कि अंग्रेज शासकों का ख्याल था कि जब जनता पुलिस की ज्यादतियों की खुलकर शिकायत करेगी तभी पुलिस में सुधार होगा। इसे ध्यान में रखते हुए और यह देखते हुए कि अधिकतर जनता अनपढ़ और नासमझ है, शासन ने यह नीति बनाई थी कि पुलिस के खिलाफ कोई शिकायत यदि जांच पर गलत पाई जाए तो भी साधारणतः शिकायतकर्ता के खिलाफ कार्रवाई न की जाए, किंतु इसका नतीजा यह हुआ कि शिकायतों की भरमार हो गई और अधीक्षकों के लिए हरेक शिकायत की गहराई से जांच करना मुश्किल हो गया। फिर इन अधिकारियों ने जल्दी ही देख लिया कि कई बार शिकायतकर्ता पुलिस पर आरोप मढ़ने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार होते हैं कई बार असरदार लोग भी अपने स्वार्थ के लिए पुलिस की शिकायत करने से नहीं चूकते। जब वह फरियादी होते हैं और पुलिस उनके बताए अनुसार कार्रवाही नहीं करती तो वह पुलिस को निकम्मा या बेईमान बताने से नहीं चूकते और जब उनसे खुद के खिलाफ शिकायत होती है तो वह पुलिस को पटाने का तुरंत प्रयास करते हैं और यदि पुलिस न मानी तो बहुत जल्दी उस पर आरोप मढ़ देते हैं कि वह पैसा ऐंठने के लिए उनके खिलाफ झूठा केस बना रही है। इन अधिकारियों की कठिनाईयां इस बात से और भी बढ़ गई कि न सिर्फ उनके मातहत बल्कि जनसाधारण भी अक्सर उन्हें पूरा सच बताने को तैयार नहीं होते थे। इसीलिए कई बार शिकायतें सही होने पर भी साबित हो सकी और दोषी अधिकारियों को दंडित नहीं किया जा सका। सर एडवर्ड ने उसी किताब में एक नारायण सिंह के बारे में लिखा है (पेज

211) जिसने अपराधों की पतासाजी के लिए बहुत से इनाम हासिल किए थे यद्यपि सेशन जज को संदेह था कि वह संदेहियों को यातनाएं देकर अपराधों का पता करता था और सेशन जज ने इसके बारे में कॉक्स साहब को बताया था और उन्होंने, जो नारायण सिंह को कतई पसंद नहीं करते थे, उन शिकायतों के बारे में जांच भी की थी।

अधीक्षकगण के दोषी पुलिस कर्मचारियों को निरंतरता से सजा न देने का पुलिस पर गहरा असर पड़ा क्योंकि अब नए पुलिस कर्मियों के सामने रोल-मॉडल चुनने के लिए दो तरह के वरिष्ठ कर्मी मौजूद थे। एक वह जो हिम्मती और चतुर कहे जाते थे (हिकमत अमली से काम लेते थे) जिन्हें जनता से वाहवाही तथा अधिकारियों से इनाम मिलते थे और जो निजी जिंदगी में (घूस के दम पर) खुशहाल थे और दूसरे वह जो लकीर के फकीर माने जाते थे, जिनकी इज्जत तो थी मगर न कोई वाहवाही, न कोई इनाम और जो निजी जिंदगी में तंगहाल थे (क्योंकि पुलिस कर्मियों की तनखाहें बहुत कम थी) ऐसे में, अधिक लोगों का झुकाव किस तरफ रहा होगा, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

### मजिस्ट्रेट के हाथों सौंपे गए कई अधिकार

अंग्रेज शासकों को जल्दी ही बात का गुमान हो गया था कि सन् 1861 के सुधारों के बाद भी पुलिस की कार्यक्षमता या उसकी छवि में कोई सुधार नहीं आया है। पहले यह माना गया कि ऐसा अधीक्षकों की (भले वह अंग्रेज ही क्यों न हो) कमजोरी और उनका अपने मातहतों के खिलाफ शिकायतों को ठीक ढंग से न लेने के कारण हुआ। अतः मजिस्ट्रेटों को----जो परखे हुए व अनुभवी अधिकारी थे। पुलिस के ऊपर नियंत्रण के और भी अधिकार दिए गए। उदाहरणतः सन् 1976 में अवध प्रांत में पुलिस अधीक्षक को औपचारिक तौर

पर जिला मजिस्ट्रेट का पुलिस सहायक और इससे ज्यादा कुछ नहीं बना दिया गया तथा किसी भी नियुक्ति, तबादला, दंड या पदोन्नति का आदेश देने से पहले जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। इसी तरह कमिश्नर को पदेन उप महानिरीक्षक पुलिस घोषित कर दिया गया और उप महानिरीक्षक के दंड देने तथा पदोन्नति देने के अधिकार कमिश्नर को दे दिए गए। (डा. आनंद स्वरूपगुप्ता ने अपनी किताब *Police In British India - 1861 to 1947, Agra, 1979, Page-52* में संबंधित आदेश को उद्धृत किया है)। किंतु इस तरह के उपायों से भी जब कोई विशेष सुधार नहीं हुआ तो सन् 1902 में दूसरा पुलिस कमीशन बिठाया गया।

इस पुलिस कमीशन ने पाया (रिपोर्ट का पैराग्राफ 201) कि पुलिस अपने कार्य में अक्षम है, उसकी संरचना तथा उसकी ट्रेनिंग में खामियां हैं। उसके काम की निगरानी कमजोर है, जनता पुलिस को भ्रष्ट एवं अत्याचारी मानती है और पुलिस जनता का विश्वास और उसका सौहार्द्रपूर्ण सहयोग प्राप्त करने में पूरी तरह विफल रही है। कमीशन ने कानूनों के बारे में कहा कि वह विवेचना के लिए बिल्कुल सही है और पुलिस की कार्यप्रणाली में जो दोष देखे गए हैं उनका कारण केवल यह कि कानूनों का उल्लंघन किया जाता है या उन्हें अक्लमंदी से लागू नहीं किया जाता है। कमीशन ने विवेचना अधिकारियों के लिए कई नुस्खे भी बताए, कारगर साबित नहीं हुए। कमीशन ने पुलिस की जो तस्वीर पेश की उससे शासक वर्ग की भंवे तन गईं और कमीशन की रिपोर्ट दो वर्ष तक चले पत्राचार के बाद ही प्रकाशित की गईं। बहरहाल, इस रिपोर्ट का भी पुलिस के कार्य अथवा व्यवहार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इस रिपोर्ट के प्रकाशन के कुछ ही समय बाद बंगाल का विभाजन हुआ विभाजन के फलस्वरूप राजनैतिक परिस्थितियों में जो बदलाव आया

उसे देखते हुए अंग्रेज शासकों ने पुलिस में सुधार का विचार ताक पर रख दिया और उसे राजनैतिक दमन का विश्वसनीय औजार बनाए रखने पर सारा जोर डाल दिया। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले बहुत से लोगों ने तथा समाज सुधारकों ने उस समय के हालात के बारे में जो लिखा है उससे स्पष्ट है कि पुलिस द्वारा लोगों को अवैध हिरासत में रखना, तरह-तरह की यातनाएं या लालच देकर पूछताछ करना और पुलिस में भ्रष्टाचार आम बातें हो गई थी और अंग्रेज अधिकारी इन सबकी शिकायतों पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे। सन् 1947 में स्वतंत्रता मिलने के बाद इस बात की बड़ी उम्मीदें बनी थीं कि पुलिस में सुधार होगा इस दृष्टि से देश के सभी बड़े राज्यों ने पुलिस कमीशन बिठाए तथा लॉ कमीशन भी स्थापित किया गया। सभी कमीशनों ने पुलिस की गलत कारगुजारियों को रोकने के उपाय सुझाए लेकिन किसी ने उन कायदे-कानूनों में कोई बदलाव नहीं सुझाए जो पुलिस के कार्यकलापों को नियंत्रित करते हैं। आपातकाल के दौरान पूरे देश में पुलिस की जो तस्वीर सामने आई उससे साबित हो गया कि इन कमीशनों की रिपोर्टों का पुलिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आपातकाल के बाद बनी नई सरकार ने सन् 1977 में राष्ट्रीय पुलिस कमीशन स्थापित किया। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्टों में पुलिस का जो चित्र प्रस्तुत किया वह लगभग वैसा ही था जैसे सन् 1902 के कमीशन ने प्रस्तुत किया था। परंतु इस कमीशन ने पुलिस की कानूनी कठिनाईयों का संक्षिप्त सा जिक्र किया और कहा (आठवीं रिपोर्ट 1981, पेज-14) अभी तक कोई पुलिस अधिकारी यह नहीं समझ सका कि वह कैसे पूरी तरह कानूनी दायरे में रहकर डकैती की विवेचना कर सकता है और कोर्ट से अपराधियों को सजा करा सकता है। यही बात कई अन्य अपराधों के संबंध में भी लागू होती है। कमीशन ने यह भी कहा कि पुलिस की कानूनी

कठिनाईयों की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए। कमीशन की इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

### निष्कर्ष

आपराधिक प्रकरणों में न्याय का ढांचा अंग्रेजों ने 19वीं सदी में तत्कालीन परिस्थितियों और अपनी सोच के आधार पर बनाया था। इससे पुलिस की कार्य क्षमता या कार्यशैली में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ बल्कि कानूनी सीमाओं में रहकर काम करने वाले पुलिस कर्मियों को सफलता मिलना बहुत कठिन हो गया और पुलिस में बहुत सी कुप्रथाओं ने जन्म लिया। स्वतंत्रता के बाद इस ढांचे को यथावत रखा गया है और इसमें न्याय प्रक्रियाओं में देरी तथा पुलिस के काम में अवांछित राजनैतिक हस्तक्षेप जोड़ दिए गए हैं। नतीजा यह है कि आज एक तरफ पुलिस में भ्रष्टाचार बुरी तरह फैला हुआ है, पुलिस द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग की रिपोर्ट रोज ही आती है, हर मुठभेड़ के बाद पुलिस कार्रवाही फर्जी होने का लांछन लगता है और पुलिस की हिरासत में मौत भी आए दिन होती रहती है। दूसरी ओर पुलिस की अपराधियों को पकड़कर उन्हें सजा दिलाने की क्षमता कतई संतोषप्रद नहीं है। अमीर अपराधी तथा संगठित अपराधी हत्या जैसे गंभीर अपराध करके भी बच निकलते हैं, हर क्षेत्र में माफिया का बोलबाला हो रहा है तथा युवा वर्ग अपराधियों को स्वतंत्र रूप से घूमते तथा अपनी दौलत और ताकत का डंका बजाते देखकर अपराधों की ओर खिंचता जा रहा है, मालीमुथ कमेटी ने अपनी रिपोर्ट (2003) में आपराधिक न्याय-प्रणाली के बहुत से महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार किया है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस के काम में राजनैतिक हस्तक्षेप को नियंत्रित करने और पुलिस में सुधार की दृष्टि से कई निर्देश दिए हैं और सोली सोराबजी कमेटी ने नए पुलिस एक्ट का मसौदा तैयार किया है, किंतु इन सब में भी जो

असली प्रश्न है उसका उत्तर नहीं मिलता। कि आखिर कैसे एक ईमानदार पुलिस कर्मी, पूरी तरह कानून के दायरे में काम करते हुए अपराधियों को जिनमें माफिया के सदस्य, कर्तव्यविमुख पुलिसकर्मी, बेईमान राजनेता आदि सभी हैं---पकड़कर न्यायालय से दंडित करा सकता है और वह भी इतनी निरंतरता से कि अपराध के प्रति झुकने वाले को यह दिखाई दे जाए कि अपराध करने पर शायद उसे अपराध की कमाई पर ऐश

करने के बजाए जेल में चक्की पीसते हुए ही समय गुजारना पड़ेगा। शायद अब जनता को स्वयं आवाज उठाने की जरूरत है कि पुलिस में सुधार, कानून में सुधार आदि पर बहस करने के बजाए उक्त प्रश्न का समग्र उत्तर ढूंढा जाए अन्यथा अपराध के शिकार परिवार न्याय के लिए भटकते रहेंगे और समाज पर अपराध का डरावना साया गहराता जाएगा।





# “नारी के विरुद्ध अपराध एक सटीक अवलोकन”

मुकेश कुमार

वरिष्ठ प्राध्यापक कमल माडल सीनियर सै. स्कूल  
मोहन गार्डन, नई दिल्ली

मानव शांति की खोज में अनवरत लगा रहता है। यह दीगर बात है कि कुछ लोग एकांत में शांति की खोज करते हैं जबकि कुछ लोग परस्पर कहकहों में शांति को ढूंढते हैं। कुछ लोग पलायन की ओर बढ़ते हैं जबकि कुछ लोग नशीले पदार्थों द्वारा हासिल करना चाहते हैं यद्यपि शांति के लिए हर देश और देशवासी कार्यरत है इसके बावजूद चारों ओर अशांति ही दिखाई देती है। अपराधों की मात्रा बढ़ती जा रही है। नए-नए प्रकार के अपराध दिन-प्रतिदिन उजागर हो रहे हैं। ऐसे में सहज ही यह शंका जन्म लेने लगती है कि क्या मानव की सहज प्रकृति अब भी शांति ही है।

पिछले कुछ समय से ऐसी प्रवृत्ति देखने में आई है कि नारी के विरुद्ध अपराध बढ़ रहे हैं। पहले-पहल नारी के विरुद्ध जो अपराध दृष्टिकोण होते थे उनके केंद्र में था----पैसा। दहेज के लालच में बलि की वेदी पर चढ़ने वाली महिलाओं की संख्या काफी अधिक थी। लेकिन इस समय नारी के विरुद्ध जो अपराध सर्वाधिक व्यापक है, वह है----यौन उत्पीड़न। यौन उत्पीड़न के विभिन्न रूप समाज में उजागर हो रहे हैं। वैश्यावृत्ति छेड़छाड़ से लेकर बलात्कार तक नारी, यौन उत्पीड़न की शिकार हो रही है। शायद ही कोई देश ऐसा हो जहां यह उत्पीड़न नहीं हो रहा हो, हर देश व समाज में न्यूनाधिक रूप में नारी के विरुद्ध यह उत्पीड़न बढ़ रहा है।

ऐसे में सहज ही ध्यान इस ओर जाता है कि इस

अपराध की अभिवृद्धि का कारण क्या है। इसके कारणों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि इस सामाजिक विकृति के निम्नलिखित कारण हैं।

- (1) पाश्चात्य सभ्यता के उन्मुक्त यौनाचार का प्रभाव।
- (2) फैशन में बढ़ रही नग्नता।
- (3) संचार माध्यमों की अश्लीलता।
- (4) वर्ग भेद के कारण उपजी कुंठा
- (5) शिक्षा में नैतिकता का अभाव
- (6) सामाजिक दबावों की प्रभावहीनता
- (7) अपराध के अनुरूप सजा न मिल पाना
- (8) असमानताजनित ईर्ष्या
- (9) पारिवारिक तनाव
- (10) बेरोजगारी के कारण पारिवारिक दूरी

**(1) पाश्चात्य सभ्यता के उन्मुक्त यौनाचार का प्रभाव----** वैश्वीकरण ने दुनिया को छोटे से गांव के रूप में परिवर्तित कर दिया है। मुक्त व्यापार के कारण एक देश के सामान का, दूसरे देश में आवागमन आसान हो गया है। लेकिन सिर्फ सामान व्यापार नहीं कर सकते इस कारण लोगों का आवागमन भी बढ़ा है। लोगों का आवागमन बढ़ने से सांस्कृतिक व सामाजिक परंपराओं का आगमन अनिवार्य है। पश्चिमी लोगों के आगमन से पाश्चात्य खुले पहनावे ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया तथा खुलेपन की हवा चलने लगी। कैबरे आदि के माध्यम से पहले ही पश्चिमी खुलेपन की झलक लोगों को मिल चुकी थी, वैश्वीकरण द्वारा वहां की संस्कृति व सभ्यता का लोगों को साकार रूप से परिचय मिल गया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बड़ी संख्या में महिलाओं के लिप्त होने के कारण पश्चिमी सभ्यता के यौन दृष्टिकोण का आगमन भारत में हुआ। शहरों में ही नहीं, गांवों तक में यह ज्ञात हो गया कि पश्चिम में

व्यस्क नर-नारी के यौन संबंध रखने पर कोई पाबंदी नहीं है, जबकि भारत में इस संबंध में अनेक वर्जनाएं थी और हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह से पूर्व यौन संबंध बनाना असामाजिक तथा अनैतिक है। यह वर्जना कोई आज की वर्जना नहीं, बल्कि वैदिक काल से चली आ रही है। यद्यपि इसके अपवाद तो हमेशा होते रहे हैं परंतु आम तौर से, विवाह से पूर्व यौनाचार को नैतिक सहमति कभी नहीं मिल पाई। जो भी हुआ, चोरी-छिपे और अपराध भाव से हुआ है।

यद्यपि भारतीय संविधान वयस्क स्त्री-पुरुष को परस्पर सहमति के आधार पर यौन संबंध बनाने की स्वतंत्रता दे देता है। परंतु यह स्वतंत्रता मात्र कानूनी स्वतंत्रता है, इसकी नैतिक व सामाजिक मान्यता बिल्कुल नहीं है। इसके विपरीत पश्चिमी जगत में उन्मुक्त यौनाचार की पुरानी परंपरा है। वयस्क स्त्री-पुरुष ही नहीं, बल्कि किशोर व बच्चे भी इस रोग के ग्रस्त देखे गए हैं वहां के नाइट क्लब तो इस रोग के प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके अतिरिक्त भी अनेक खुलेपन के ऐसे आयोजन वहां चलते रहते हैं जो भारतीय जन-जीवन में न तो स्वीकृत हैं और न ही प्रचलित। भारतीय स्त्री-पुरुषों को इस स्वतंत्रता का ज्ञान हुआ तो उनमें अपनी वर्जनाओं को तोड़ने की ललक बढ़ी। सामाजिक मान्यता को खुले आम तोड़ने का खतरा तो किसी ने लिया नहीं, हां, चोरी-छिपे जरूर यह चलन बढ़ने लगा। यह इच्छा बढ़ी तो, सहमति-असहमति की परवाह किए बिना यौनाचार का प्रयास किया गया। परिणामतः छेड़छाड़ और यौन उत्पीड़न की घटनाएं बढ़ीं। गांव-शहर, कोई भी इस मामले में पीछे नहीं रहे। हां, बदनामी के भय से मामले प्रकाश में कम आए, परंतु पिछले कुछ

वर्षों से ऐसे मामलों की संख्या काफी बढ़ गई। साथ ही लोगों की इसमें भागीदारी भी बढ़ी है। ऐसे वाले लोगों में बड़ी मात्रा में उन्मुक्त यौनाचार का चलन बढ़ा है। चूंकि इस मामले में स्त्री की स्थिति ज्यादा जोखिम वाली होती है इसलिए अधिकांशतः पीड़ा उसे ही भोगनी पड़ी।

स्पष्ट है कि छेड़-छाड़ व नारी उत्पीड़न की घटनाओं के पीछे एक बड़ा कारण पश्चिमी देशों की उन्मुक्त यौनाचार परंपरा भी है।

**(2) फैशन में बढ़ रही नग्नता----** भारतीय समाज प्रारंभ से ही नारी स्वतंत्रता का पक्षधर रहा है। शास्त्रार्थ आदि में अपाला व गार्गी आदि की भागीदारी इस पक्षधरता का ऐतिहासिक प्रमाण है। इसके अतिरिक्त हवन व यज्ञ की संपूर्णतः की अनिवार्य शर्तों के रूप में नारी की भागीदारी भी इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि भारतीय संस्कृति नारी स्वतंत्रता की पक्षधर ही नहीं, बल्कि उसमें भी कहीं बढ़कर है। उपनिषदों में ऐसे प्रमाण दिए गए हैं, जिनके अनुसार नारी के नाम पर वंश तक चलते रहे हैं। सत्यकाम के साथ जांबाल, उसकी माता जांबाली के नाम पर ही जोड़ा गया था। प्रारंभ में नारी स्वतंत्रता की स्थिति बहुत अच्छी थी परंतु भारत में इस्लाम के आगमन के बाद स्थिति बदल गई। इस्लाम के आगमन के बाद पर्दा-प्रथा भारत में आई। इस्लामी शासकों के शासन काल में स्थिति और भी बदल गई। सामाजिक परिस्थितियां बदल जाने के कारण नारी शिक्षा पिछड़ गई। स्त्री घर की चारदीवारी में कैद होकर रह गई। पर्दे में ढकी होने के कारण उसकी सीमाएं और भी संकुचित हो गईं और वह स्वतंत्रता की बजाए परतंत्रता की प्रतीक होकर रह गई। यहां मुझे यह स्पष्ट करना उचित जान पड़ता है। कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, किसी धर्म-

विशेष की आलोचना करना लेखक का मंतव्य नहीं है।

ऐसी परिस्थितियों व बंधनों में जकड़ी नारी की स्थिति सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए, परंतु विकृतियों का आगमन तो बहुत तेज गति से होता है जबकि सुधार धीरे-धीरे होते हैं। अनेक समाज-सुधारकों व संस्थाओं की कोशिश से नारी की स्थिति सुधरी तो जरूर लेकिन वह पूर्णतः स्वतंत्रता का स्वाद अभी तक नहीं चख पाई है। गांवों में तो स्थिति और भी भयंकर है। ऐसी भयंकर परिस्थितियों में रह रही नारी को पाश्चात्य उन्मुक्तता का जरा सा परिचय मिला तो उसकी स्थिति बदल गई। पाश्चात्य उन्मुक्तता ने जैसे उसके पिंजड़े के द्वार खोल दिए तथा वह नई-नई ऊंचाइयां स्पर्श करने लगी। शिक्षा व व्यावसायिकता के क्षेत्र में उसका कदम बढ़ाना सामाजिक क्रांति का प्रतीक बन गया। इस सामाजिक क्रांति का नकारात्मक प्रभाव भी रहा। वह रहा---फैशन का बदलता नजरिया।

भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण काफी हद तक वर्जनात्मक था। स्त्री को संयम से रहना होता था। ताकि बुरी दृष्टि उसकी ओर उठे ही नहीं, परंतु हवा का रूख कुछ ऐसा हुआ कि नारी स्वतंत्रता की लहर चलने लगी। वर्जनाओं के विरुद्ध नारी उठ खड़ी हुई और उसने अपने अस्तित्व का एहसास कराना शुरू कर दिया। सिर्फ पर्दा ही खत्म नहीं हुआ, उसका सिर भी खुल गया। सूट-सलवार का स्थान मिनी स्कर्ट ने ले लिया। पहले उसके तन को ढकने की तरफ जितना जोर लगाया गया था, उस जोर के विरुद्ध उसने विद्रोह कर दिया। उसके तन के कपड़े एक-एक कर घटते चले गए। जैसे-जैसे उसके कपड़ों की मात्रा कम हुई, पाश्चात्य उन्मुक्त यौनाचार को आक्सीजन मिल

गई। नारी स्वतंत्रता के नाम पर नारी स्वयं एक वस्तु बन गई। उसका शरीर स्वयं व्यापार का प्रतीक बन गया। व्यापार में उसकी भागीदारी बढ़ गई पैंटी से लेकर सिगरेट तक के विज्ञापनों में नारी शरीर का प्रदर्शन शुरू हो गया। जो वस्तुएं नारी प्रयोग ही नहीं करती, उन वस्तुओं में भी नारी शरीर का उपयोग करके उस वस्तु की बिक्री बढ़ाने का प्रयास, नारी शरीर के उपभोक्ता वस्तु बन जाने का ही प्रमाण है।

वर्तमान परिस्थितियां इस प्रकार की हैं कि नारी समाज की वर्जनाओं के विरुद्ध आक्रामक स्थिति में है, उसके शरीर से जिस गति से कपड़े घटते जा रहे हैं, उसी गति से उसका शोषण भी बढ़ रहा है जिसे वह अपनी स्वतंत्रता समझ रही है वह वस्तुतः उसके शोषण का प्रतीक है तथा उसे असुरक्षित स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है।

स्पष्ट है कि नारी उत्पीड़न का एक बड़ा कारण फैशन में दिनोंदिन बढ़ रही नग्नता भी है।

**(3) संचार माध्यमों की अश्लीलता----** भारतीय जन-जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव जिस गति से बढ़ा है उसी गति से संचार माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों में अश्लीलता भी बढ़ी है। जो यौन संबंध व्यक्तिगत स्तर पर बनाए जाते थे, “फायर” और “वाटर” के नाम पर सार्वजनिक प्रदर्शन के विषय हो गए हैं।

यद्यपि भारतीय समाज में इस संबंध में बहुत हद तक खुलापन रहा है यहां तक कि महर्षि वात्स्यायन का “कामसूत्र” तथा कोका पंडित का “कोक शास्त्र” यहां बहुप्रचलित ग्रंथ रहे हैं तथापि इन ग्रंथों के प्रचलन में होने के बावजूद यौनाचार व्यक्तिगत विषय ही रहा है सामूहिक नहीं परंतु पाश्चात्य यौनाचार की देखा-देखी भारतीय कार्यक्रम निर्माता भी जैसे विद्रोहात्मक स्थिति में आ गए। पर्दे पर

नारी देह का खुल्लम-खुल्ला प्रदर्शन होने लगा। अनैतिक संबंधों की स्वीकार्यता बढ़ गई। जो कुछ फिल्म में लोग देखते उसे किसी हद तक स्वयं भी स्वीकार करने लगे। फिल्मों में अश्लीलता की होड़ ऐसी लगी कि एक निर्माता, दूसरे निर्माता से आगे बढ़ने की फिराक में रहने लगा। अलग-अलग कोणों से नारी देह की पैमाइश शुरू हो गई और दर्शक जैसे अनैतिकता को अपनाने की मुद्रा में आ गए। दर्शक का नैतिक पतन शुरू हुआ तो जैसे फिल्म निर्माताओं की मुंह मांगी मुराद पूरी हो गई। अश्लीलता को सफलता का परमिट मानकर उन्होंने फिल्में बनाई और अप्रत्यक्षः दर्शक को उस ओर जाने को प्रेरित किया, जिस ओर जाना वह अब तक प्रतिबंधित मानता था।

दैनिक समाचार पत्रों में प्रायः यह स्पष्ट जानकारी मिलती कि अनेक अपराधियों से की गई पूछताछ में यह तथ्य उजागर होता है कि उनके मन में प्रेरणा रूप में किसी न किसी फिल्मी कहानी ने अपनी भूमिका निभाई। स्पष्ट है कि नारी के विरुद्ध अपराध करने को प्रेरित करने में संचार माध्यमों की अश्लीलता की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

- (4) **वर्गभेद के कारण उपजी कुंठा**---- यद्यपि वर्ग भेद का आधार तो मूलतः आर्थिक ही है तथापि यह एक अटल सत्य है कि जिनका आर्थिक आधार जितना मजबूत होगा, उनका रहन-सहन पहनावा भी उतना ही तड़क-भड़क वाला होगा। अपनी हैसियत के अनुसार रहन-सहन गलत भी नहीं है, परंतु उपभोक्तावाद के इस दौर में सब्र, संयम व धैर्य का पूर्ण अभाव है जिस कारण धनी, निर्धन से घृणा करता है और निर्धन धनी की अपनी कुंठा है और निर्धन की अपनी। यही कारण है कि कुछ वर्ष पूर्व कुछ मदहोश परंतु धनी वर्ग से संबंधित युवकों ने अपनी बी.एम.डब्ल्यू कार से

गरीब किसानों तथा पुलिस के सिपाही को भी अपनी गाड़ी से टक्कर मार कर मौत के घाट उतार दिया था। दूसरी ओर यौन उत्पीड़न के अधिकांश मामलों में उत्पीड़न करने वालों की आर्थिक पृष्ठभूमि भी कहीं न कहीं कमजोर होती है। कई बार यह भी होता है कि अपने मालिक के प्रति असंतोष रखने के कारण स्वयं उसकी संतानों का उत्पीड़न करके, नौकर अपनी कुंठा और हीन भावना का प्रमाण देता है। परस्पर घृणा के कारण ऐसे अपराधों को पनपने का पूर्ण अवसर मिलता है और पुलिस की सिरदर्दी बढ़ती है। महिला के सुंदर तथा स्वयं के अनाकर्षक होने के कारण भी कई बार अपराधी में कुंठा उत्पन्न हो जाती है और वह अपनी कुंठा को दूर करने के लिए अपराधी यौन उत्पीड़न कर बैठता है।

कुंठा के कई कारण हो सकते हैं और उस मनोवैज्ञानिक कुंठा के कारण किसी अन्य को उसका शिकार होना पड़ सकता है इसीलिए कुंठित व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक समाधान मिलना चाहिए।

- (5) **शिक्षा में नैतिकता का अभाव**---- दुर्भाग्य का विषय है कि शिक्षा का संबंध पूरी तरह रोजगार से जोड़ दिया गया है जबकि शिक्षा स्वयं को जानने-पहचानने और सही निर्णय में सक्षम बनाने का नाम है लेकिन आज शिक्षा काफी हद तक हैसियत की प्रतीक बन गई है पूर्णः व्यावसायिक रूप ले लेने के कारण शिक्षा से नैतिक तत्व गायब हो गए। जबकि इसमें सूचनाओं व क्षुद्र व्यावसायिक हथकंडों की भरमार हो गई है। स्थिति ऐसी हो गई है। कि सूचना व ज्ञान का अंतर खत्म सा हो गया है यह अंतर खत्म होने का ही परिणाम है कि शिक्षित की कमी नहीं परंतु चरित्रवानों की बहुत कमी है। काबिल से काबिल अधिकारी भी, अवसर मिलते ही, अपराधी की भूमिका अख्तियार

कर लेता है। जो जितने कम महत्व के पद पर होता है। वह उतना ही अधिक भयभीत होता है जो ज्यादा महत्वपूर्ण पद पर होता है वह खुले आम अपराध करता है। उसे पता होता है कि उसकी ताकत इतनी ज्यादा है कि कानून के रक्षक उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि नैतिकता सिर्फ किताबी विषय नहीं है। बल्कि व्यावहारिक विषय है। शिक्षक का विद्यार्थी के प्रति ऐसा व्यवहार हो कि उसके मन में शिक्षक के प्रति श्रद्धा हो लेकिन आज स्थिति इसके विपरीत है। शिक्षक भी स्कूल में रोजगार संबंधी कर्तव्य निभाने तक ही सीमित है, साथ ही विद्यार्थी और उनके परिजन भी उन्हें श्रद्धा की बजाए इसी व्यावसायिक दृष्टि से ही देखते हैं। दोनों का संबंध मात्र विद्यालयीन समय तक सीमित होकर रह गया है। जबकि पूर्व में ऐसा नहीं था। शिक्षकों की छाप जीवन पर इतनी गहरी पड़ती थी कि मिटाए नहीं मिटती थी। महात्मा गांधी का उदाहरण सहज ही ध्यान में आता है जो कांग्रेस अध्यक्ष बनने के बाद भी अपने स्कूलों के शिक्षकों के चरण स्पर्श करना नहीं भूले। ये मानवीय मूल्य नैतिकता की आधारशिला है जो कि दुर्भाग्य से आज गायब हैं। आज नैतिक शिक्षा की पुस्तकें तो मौजूद हैं लेकिन नैतिकता की आधारशिला लुप्त है यही कारण है कि खाने-पीने, पहनने और बोलचाल से जो सभ्य नागरिक लगता है अवसर मिलते ही वह तुरंत अपनी भूमिका बदल लेता है। अनेक सामाजिक अध्ययन भी इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि जो पुरुष महिलाओं से दोस्ती करके उनके विश्वासपात्र बनते हैं वही कालांतर में बलात्कारी भी बन जाते हैं।

विश्व-स्वास्थ्य द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में हर 54 मिनट पर एक महिला

के साथ बलात्कार होता है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार बलात्कार करने वाले 10 में से तीन व्यक्ति पीड़ित महिला मित्रों या रिश्तेदारों का इस अतिजघन्य अपराध में शामिल होना इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए काफी है कि हमारे घर, परिवार व समाज में नैतिकता का पतन किस हद तक हो चुका है।

**(6) सामाजिक दबावों की प्रभावहीनता----** कुछ वर्ष पहले सामाजिक दबाव इस हद तक हावी थे कि व्यक्ति को यह भय सताता रहता है कि अगर उसके बारे में किसी को पता चल गया तो उसका सामान्य जीवन जी पाना कठिन हो जाएगा। बदनामी का डर बहुत हद तक व्यक्ति को संयमित रखता था लेकिन अब स्थिति इसके विपरीत हैं। धन की प्रधानता ने समाज की संरचना को इस प्रकार प्रभावित किया है कि व्यक्ति सोचता है कि पैसे से सब कुछ जुटाया जा सकता है----शौहरत, इज्जत प्रसिद्धि आदि। पैसे के बल पर किसी भी अपराध पर पर्दा डाला जा सकता है। व्यक्ति के मनोमस्तिष्क में आए इस विचार ने उसे उच्छृंखल और निर्भय बना दिया है इसीलिए अब वह भय की कोई परवाह नहीं करता। आर्थिक ताने-बाने ने व्यक्ति को घर-परिवार के बंधनों से दूर कर दिया है। एकल परिवार होने के कारण वह स्वयं अपने ही परिवार के 4-5 सदस्यों तक सीमित रहता है। शेष समाज से उसका ज्यादा संबंध नहीं रहता। अपने ही परिवार में सीमित रहने के कारण प्रायः किसी को किसी के बारे में सोचने की न तो फुर्सत है और न ही रुचि। इस परिस्थिति के कारण सामाजिक दबाव घट गए हैं और आदमी इस ओर से स्वयं को पूर्णतः स्वतंत्र महसूस करता है। साथ ही यह भी एक तथ्य है कि समाज के मूल्य अब परिवर्तित हो गए हैं। धनी व्यक्ति सर्वत्र स्वीकार्य

है। उसके कमजोर चरित्र को भी अनदेखा कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति से समाज का सही दबाव हो ही नहीं सकता। कारण चाहे जो भी हो, यह तथ्य दिन के उजाले की तरफ स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्यों का निरंतर पतन हो रहा है और उसी गति से सामाजिक दबावों का प्रभाव भी घट रहा है। यह स्थिति अपराधी मनोमस्तिष्क के पूर्णतः अनुकूल है।

**(7) अपराध के अनुरूप सजा का न मिल पाना----**

इंडियन पैनल कोड की धारा 375 में बलात्कार की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि महिला के साथ उसकी इच्छा व सहमति के बिना जबरन, गलत-ब्यानी या धोखा-धड़ी से उसे नशे में लाकर या धोखा देकर या उसकी मानसिक अस्वस्थता की स्थिति में या हर हाल में जब वह 16 वर्ष से कम उम्र की हो----संभोग करना बलात्कार है।

बलात्कार का अपराध यदि साबित हो जाए तो वयस्क महिला के मामले में 7 साल और अवयस्क बालिकाओं के मामले में 10 साल की सक्षम सजा हो सकती है।

बेशक उपर्युक्त कानूनी स्थिति अपराधी को भयभीत तो कर ही सकती है परंतु इन कानूनों का पूरा लाभ तभी हो सकता है जबकि अपराधियों को सजा मिल सके। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता है। कानूनी प्रक्रियाएं इतनी जटिल होती हैं कि पीड़ित उन बाधाओं को प्रायः पार नहीं कर पाती। यही कारण है कि भारत में बलात्कार के 100 में से केवल 10 मामले ही सामने आ पाते हैं।

सी.डब्ल्यू डी. एस. के अनुसार भारत में 35 मिनटों पर एक बलात्कार होता है। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों से भी ज्यादा भयंकर है : स्थिति इतनी अधिक जटिल है कि बलात्कारी बेखौफ हो चले हैं और नारी के विरुद्ध अपराधों

की दृष्टि से सामाजिक स्थिति भयावह है। हमारे देश की न्यायिक प्रक्रिया पूर्णतः साक्ष्यों पर निर्भर है। स्त्रियों के साथ घटने वाले ऐसे भयावह अपराधों के साक्ष्यों के अभाव में दोषमुक्त करार दिए जाते हैं। इससे उनकी आपराधिक प्रवृत्ति को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। न्यायिक प्रक्रिया के दौरान पीड़िता से प्रायः वकील शालीनता की सीमाओं को लांघकर इतने अश्लील प्रश्न पूछते हैं जिससे उसका होने के कारण बहुत-सी स्त्रियां न्यायिक प्रक्रिया के बीच ही मुकदमों को वापस ले लेती हैं पीड़ित यदि कन्या है तो उसके माता-पिता बदनामी के डर से अपनी पुत्री को अपमान, ग्लानि और पीड़ा का जहर, चुपचाप पीने को विवश कर देते हैं। यही कारण है कि अपराधी सिर ऊंचा करके घूमते हैं और अपराध की शिकार स्त्री मूक, निरीह व उपेक्षित जीवन जीने को विवश रहती है।

**(8) आर्थिक असमानता जनित ईर्ष्या----**

यद्यपि आर्थिक समानता तो समाज में हर समय मौजूद रहती है। इस असमानता के कारण ईर्ष्या भी स्वाभाविक रूप से होती है। लेकिन पिछले दिनों कुछ घटनाएं इस प्रकार की घटित हुई हैं कि पीड़ित उच्च वर्ग की है जबकि अपराधी निम्न आय वर्ग का। विश्लेषण से ऐसा निष्कर्ष निकला कि अपराधी के दिमाग में आर्थिक असमानता जनित ईर्ष्या का तत्व भी बराबर कार्य कर रहा है। विपरीत परिस्थितियों के कारण आर्थिक स्तर पर तो टक्कर ले पाना संभव नहीं था। इसलिये संभव उपाए खोजा गया है। शारीरिक स्तर पर अपनी ईर्ष्या को तुष्ट करने का प्रयास किया गया। इसके अंतर्गत अबला नारी को बेहतर शिकार मानकर उसके विरुद्ध अपराध किया गया। सबसे बड़ी कठिनाई शिकार स्त्री को होना पड़ता है। आर्थिक असमानता का कारण तो कुछ और है

लेकिन इस कारण को दूर करने की बजाए सीमित सोच व संकीर्ण दृष्टि वाला व्यक्ति नारी की प्राकृतिक-शारीरिक अक्षमता का दुरुपयोग करता है। इस अक्षमता के दुरुपयोग की प्रवृत्ति तो इतनी खतरनाक है कि कुछ वर्ष पूर्व सुनीता चड्ढा नामक एक स्त्री को कुछ अपराधियों ने गोली से उड़ा दिया। पीड़ित का अपराध मात्र यह था कि वह परस्पर झगड़ते युवकों को समझाने-बुझाने लगी थी लेकिन उसकी यह शुभेच्छा भी उसके लिए जानलेवा सिद्ध हुई। यह पुरुषवादी (कर्तव्य स्थापित करने की) मनोवृत्ति का ही नतीजा है। इस सोच में परिवर्तन लाया जाना आवश्यक है, तभी इस कारण से बचा जा सकेगा। मनोवृत्ति में सार्थक परिवर्तन ही इस समस्या का एकमात्र हल है।

**(9) पारिवारिक तनाव-----** कतिपय घटनाओं में पारिवारिक तनाव भी इसका एक बड़ा कारण सिद्ध होता है। पारिवारिक तनाव के चलते सदस्यों के परस्पर संबंध कटुतापूर्ण हो जाते हैं और परिवार का संतुलन खराब हो जाता है। आपस में वार्तालाप के अवसर जब कम हो जाते हैं तो एक-दूसरे के बारे में कुछ जानना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है बच्चों को सही मार्गदर्शन नहीं मिलता और उनके भटकने के अवसर बढ़ जाते हैं। इस भटकने के कारण किशोर मन घर से बाहर सहारों व मार्गदर्शन की तलाश करता है। बाहर प्रायः सही मार्गदर्शन नहीं मिल पाता और अपराध जगत की ओर कदम बढ़ने लगते हैं। पारिवारिक तनाव के कारण परस्पर संबंध खराब हो जाते हैं। सामान्यतः तो ऐसा नहीं होता लेकिन जब कटुता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तो यह तनाव अपराधों का कारण बन जाता है। सर्वेक्षण बताता है कि परिवार में अबोध बच्चियों

व बालिकाओं के विरुद्ध जो अपराध होते हैं उनमें परिजनों, पारिवारिक मित्रों व सगे संबंधियों का हाथ होता है। यद्यपि यह स्थिति बहुत ही विसंगतिपूर्ण और दर्दनाक है। क्योंकि परिजन व संबंधी तो बालिका के रक्षक होते हैं अगर रक्षक ही भक्षक वाली स्थिति में आ जाएं, तो सुधार कौन करेगा। इस प्रकार के अपराध से बचाव हेतु पुलिस बहुत कुछ करने की स्थिति में नहीं होती। इस स्थिति में सार्थक परिवर्तन लाने के लिए समाजशास्त्रियों को अपनी भूमिका निभानी होगी।

**(10) बेरोजगारी के कारण पारिवारिक दूरी-----** स्वतंत्र भारत की यह विडम्बना रही है कि गांवों में रोजगार के अवसर कम होते गए और ग्रामीण पुरुष शहरों की ओर भागने लगे। शहरों की तरफ इस पलायन के कारण गांव सुनसान होते गए और शहरों का आकार बढ़ता गया। जनसंख्या का घनत्व बढ़ने के कारण शहरों में भी रोजगार घटे। जिन्हें सही प्रकार का रोजगार नहीं मिला, पेट भरने के लिए वे मेहनत-मजदूरी से जुड़े। कम आय के कारण परिवार को शहर में बुलाना संभव नहीं था इसलिए अकेलापन बढ़ा। इस अकेलापन के कारण क्षोभ, हीनता व इनके कारण निरंकुशता बढ़ी। इस प्रकार अपराधों का ग्राफ ऊपर उठने का यह भी एक कारण रहा।

परिस्थितियां परिवर्तित होती रहती हैं। जीवन में उतार-चढ़ाव भी चलते रहते हैं लेकिन व्यक्ति को अपना मानसिक संतुलन बनाए रखना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति किसी भी सोसाइटी अथवा सत्संग आदि से जुड़े। यदि ऐसा हो जाए तो अपने घर गांव से दूर होने के बावजूद वह अकेलेपन के एहसास से मुक्त रहेगा तथा इस प्रकार अनेक कुंठाओं व हीन मानसिकता से बचा रहेगा। वह निरंकुश नहीं हो पाएगा।

अंततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि

मानव की मूल प्रवृत्ति शांतिपूर्ण जीवन जीने की है लेकिन उपर्युक्त तथा अन्य अनेकानेक कारणों ने मानव का मूल विकृत कर दिया है, इस विकृति के कारण समाज में हर वर्ग अशांत तथा पीड़ित बना हुआ है। लेकिन सबसे दयनीय स्थिति तो नारी की है जो कि शारीरिक तौर पर आसान शिकार नजर आती है। यह स्थिति हमें एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करती है जहां कि हमें हमारी सभ्यता, धर्म व संस्कृति आदि सब रसातल की ओर बढ़ती नजर आती हैं। इस स्थिति के कारण हम अपनी दृष्टि में तो गिरते ही है। विदेशियों की दृष्टि में भी अपने स्थान से गिर जाते हैं तथा हमें स्वयं अपने ऊपर संदेह होने लगता है कि क्या हम उसी देश के निवासी हैं जहां नारी को देवी माना जाता रहा है। नौ-नौ दिनों तक लगातार देवियों की पूजा की जाती है

तथा बड़ी संख्या में, भव्य स्तर पर भगवती जागरण के आयोजन किए जाते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में मात्र एक ही विकल्प बचता है और वह यह है कि नारी के विरुद्ध अपराधों को इस लहर को शीघ्रातिशीघ्र रोका जाना चाहिए। नारी स्वयं भी किसी भी हिंसा को सहन करने के बजाए आगे आए व स्वयं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करे तो एक आदर्श के रूप में स्वयंसिद्धा बन कर खुद को समाज में अवश्य स्थापित कर पाएगी, इसमें संदेह की कोई गुजाइश नहीं है।

इस कथन की सार्थकता को निम्नलिखित उक्ति चरितार्थ करती है कि---

“कौन कहता है कि मंजिल मिल नहीं सकती।

मंजिल है बहुत पास, कदम बढ़ाकर तो देखिए।।”





# “पुलिस थाने और पुलिस का व्यवहार कितना सच कितना झूठ”

अरूण कपूर

वैयक्तिक सहायक, लोक सभा सचिवालय  
संसद एनैक्सि नई दिल्ली

पुलिस के रूखे व्यवहार से परेशान होने वाले सामाजिकों की चिंता का मुख्य कारण यह है कि आरक्षावृत्ति इन पुलिस सेवा कर्मियों में यह संवेदन शून्यता कहां से आ गई? ये सेवाधर्मी अपना काम दायित्वों की गरिमा से प्रेरित होकर कर रहे हैं अथवा केवल पेट भरने की खातिर नौकरी करते हुए सेवा की औपचारिकताओं को बखूबी अंजाम देने में लगे हैं, क्योंकि जब हम पुलिस सेवा के जनोन्मुखी परिणामों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें सुखद अनुभूति नहीं होती। ऐसा क्यों हो रहा है? जरा इन संदर्भों को उद्घाटित करने की कोशिश करें।

पुलिस में भर्ती, दीक्षा तथा नौकरी की दशाओं एवं दिशाओं का वर्गीकृत विश्लेषण एवं तदवर्ती तारतम्य हमारी सोचपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि का विषय होना चाहिए, जो आजादी के बाद के भारतीय चिंतन का सामाजिक विषय कभी नहीं रहा। सुधारों को विषय बनाकर पुलिस व्यवस्था का मार्गांतरीकृत दिशोन्नयन प्रदान करने के लिए पुलिस कमीशनर्स की एक लंबी श्रृंखला हमारे सामने है। पर क्या परिणाम हुए? भर्ती के समय की आपाधापी रुकी? दीक्षा के बाद पुलिसमैन में कड़क चुस्ती आई? वर्दी की दुरुस्ती हम सड़कों पर देख पा

रहे हैं? गवाह, हम नहीं पूरा समाज है, जो सड़क पर खड़े ड्यूटी वाले सिपाही, दरोगा आदि को रोजमर्रा की जिंदगी में देख रहा है।

थाना----समाज के सामने खुली किताब की तरह रखा हुआ है। पुलिस प्रशंसा, पुलिस छवि, पुलिस व्यवहार तथा पुलिसकार्य प्रणाली की खुली परख का विश्लेषण बिंदु थाना ही है।

पुलिस बल अधिक काम के बोझ तले दबा है। दायित्वों के निर्वाह की भूमिका में उसके सामने नौकरी की समस्या है। ड्यूटी चार्ट के बिंदुओं में उससे सभी प्रकार के वांछित तथा अनावश्यक काम करवाए जा रहे हैं। पुलिसकर्मी की चुस्ती, दुरुस्ती तथा कर्तव्य परायणता आज प्रश्नांकित होती जा रही है। इन सभी आधार बिंदुओं को सामने रखकर सोचना भी जरूरी है।

प्रश्न कुछ कांच के घरों का है,

और ये देश पत्थरों का है।

प्यासे होठों की बात मत करना,

पहरा पनघट पे अजगरों का है।

बहुत पुराने जमाने से एम.आर.ल्लाड की बात जहन में बैठी है, तब उन्होंने भारतीय पुलिस को श्रेष्ठ मानते हुए उसे श्रद्धापूर्वक सलाम कहा था। थानों की देखने वाली चुस्ती थी----पहरे पर खड़ा संतरी अपनी पीठ पर घड़ी के पैडलुम की तरह समय बताता तथा चाक-चौबंदी का दृष्ट प्रमाण था जमाने की नजर में। पुलिस छवि के निखार तथा आकर्षण के दो ही बिंदु सामने हैं, जो हम सबको साफ दिखाई पड़ते हैं। प्रथम----आरक्षी की वर्दी तथा द्वितीय थानों की व्यवस्था तथा रख-रखाव। आई.पी.एस. तथा अन्य पुलिस राजपत्रित अधिकारियों की चमक-दमक, चुस्ती-दुरुस्ती-जनदृष्टि का सामान्य विषय नहीं बनते स्वतंत्र भारत के प्रथम पुलिस महानिरीक्षक अर्थात् उत्तर प्रदेश के पुलिस प्रमुख श्री वी.एन. लाहिडी आई.पी. ने थानों के मुआइने के

वक्त वहां की रौनक तथा सुव्यवस्था पर काफी लिखा है। कप्तान के मुआइने के अवसर पर थाना दुल्हन की तरह सजाया जाता रहा है। शासन, व्यवस्था तथा अनुशासन की इन दो मजबूत कड़ियों को पुलिस कल्याण की धारा से जोड़कर अस्तव्यस्त कर दिया गया है। मेरा आशय है कि ड्यूटी का पालन कड़ाई से होना चाहिए क्योंकि कर्तव्य पालन के शिष्टाचार का दीक्षा संस्कार एक अलग विषय है तथा पुलिस कल्याण एक दूसरा विषय। अंग्रेजों ने शायद इन दोनों विषयों को आपस में मिलाने नहीं दिया था। इसी कारण आरक्षीगणों की आश्रय स्थली-थाना कर्तव्य एवं सुंदर वर्दियों से सुसज्जित फोर्स से युक्त आकर्षण केंद्र के रूप में विकसित था----यह बात सत्य है कि अंग्रेजी भारतीय पुलिस ने भारतीयों पर बहुत क्रूर अत्याचार किए थे। अब आजादी के बाद की पुलिस व्यवस्था में क्रूर सामंती व्यवस्था की कोई गुंजाइश नहीं है परंतु इसका यह मतलब भी नहीं है कि हम अपने घर को इतना बदरंग कर लें कि वर्दी पहन कर ड्यूटी करते हुए हमारे आरक्षी एवं अन्य अधिकारीगण अंगोछा भी सर पर बांध ले या गले में मफलर डाल लें। मुझे लगता है कि ड्यूटी को चुस्ती से अंजाम देने की बात में पुलिस कर्मी कल्याण की बात आड़े आ रही है। पुलिस के खुले अंग की तरह थानों की दुरावस्था हम रोज देखा करते हैं। किसी पुलिस समर्थक को यह कहते सुना गया कि पुलिस वालों की छवि को खराब करने वाले ये सिनेमा के बड़े पर्दे हैं, जहां इन्हें मोटे पेट वाला थानेदार, हवलदार के रूप में दिखाया जा रहा है। किसी वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने यह जवाब दिया था---कि क्या ये स्थिति नहीं है वस्तुतः? अर्थात् ये वास्तविक जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसे ही लगते हैं। नाटक अथवा अभिनय को नाट्यशास्त्र के विद्वानों ने लोक वृतानुकरण कहा है तो इस परिभाषा के अनुसार सिनेमा दृश्यांकनों में पुलिस छवि का विद्वपीकरण----लोक वृत से जुड़ा सा ही है। थानों की विसंगत विद्वपता,

भौंडेपन तथा असंयत व्यवहारवाली खुली नुमाइश को अच्छी दिशा देने के लिए चिंतन के विविध आयामों को वर्गीकरण का विश्लेषण प्रदान करने की आवश्यकता है :

1. पुलिस के सांगठनिक संकल्प।
2. पुलिस संगठन की सामाजिक अपेक्षाएं।
3. पुलिस दीक्षा, व्यवस्था एवं अनुशासन।
4. बढ़ते हुए दबावों, सामाजिक दायित्वों के प्रति पुलिस जागरूकता।
5. पुलिस नफरी में वृद्धि, वेतन विसंगतियों का निराकरण एवं पुलिस कर्मी हितदर्शी कल्याण।
6. पुलिस छवि-प्रजा की दृष्टि में।
7. थाना स्तर की आरक्षी संस्कृति में सुधार की संभावनाएं।
8. थाना स्तर के पुलिस-प्रशासन का मजबूत आधार।

यदि ये सभी विषय परस्पर असंगत तरीके से मिला दिए गए तो पुलिस संगठन की स्थिति बड़ी आपाधापी वाली हो जाएगी, जिसमें सेवाधर्मी पुलिस वाले स्वयं की गड़बड़ियों में फंसकर रह जाएंगे तथा समाज में उनका आरक्षाब्रत, अपराध नियंत्रण अभियान तथा उनका प्रजाहितवर्ती संकल्प स्वतः ही ध्वस्त होता हुआ प्रतिलक्षित होगा। थाने की व्यवस्थाएं ठीक करने के लिए पूर्ण आरक्षी संस्कृति में आमूल-चूल परिवर्तन की दिशा प्रदान किए जाने की आवश्यकता है। मेरा तात्पर्य है कि आरक्षी संस्कार----परित्राणाय साधूनाम की पवित्र वेदी पर पवित्र किया जाए तथा बाद की स्थिति को सज्जनों का इतना मजबूत जनबल मिलेगा कि दुष्टों का तो स्वतः नाश हो ही जाएगा अर्थात् प्राथमिकता-अपराध नियंत्रण की तुलना में सज्जनों की रक्षा तथा उनके सानिध्व को दी जानी चाहिए। पुलिस वाले की तथा विशेष कोष रूप से बड़े पुलिस अधिकारी की ये प्राथमिकताएं एवं अनुशासन क्यों बन गए हैं कि वे अमुक से मिलेंगे तथा अमुक से नहीं मिलेंगे। यदि भगवान

राम भी प्राथमिक इन अनुशासनों के ही व्यक्ति होते कि वे वनवास काल में बंदरों से नहीं मिलेंगे तो क्या वे लंका जीत पाते? कुछ नामांकित जनप्रतिनिधियों से मिलकर अपने मुख्यालयों की ओर प्रयाण करने वाले आला पुलिस अफसरों का जन संपर्क क्या इतने से ही पूरा मान लिया जाए? मैं ऐसे प्रदेश स्तर के वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को जानता हूँ जो स्वयं चलकर सज्जनों के घर पर उनसे कुशलक्षेमात्मक संपर्क साधते हैं। ये अधिकारी पुलिस छवि के पोषक एवं जनहितैषी बंधु हैं। अतः मेरा विचार है कि पुलिस का बहुरूप जो जनता में खुलकर प्रकट हो वह कुछ ऐसा हो, जिसके आकर्षण की छवि मधुरातिमधुर हो---यह रूप पुलिस का विष्णुदूती सेवक रूप है। आप विचार करें कि श्री डी. के. पंडा, आई.पी.एस. को कितनी वेदना हुई होगी जब उन्होंने कहा कि :

“मैं थाना हूँ, मेरा जन्म परी के रूप में हुआ है पर मैं दैत्य की तरह काम कर रहा हूँ।” शायद जन्म के इतिवृत्तात्मक सौजन्य को भूलता जा रहा है थाने का संवेदनशून्य व्यवहार। पुलिस कार्य प्रथा की व्यापकताओं को जब हम मानवाधिकारों की संतुलना में परीक्षित करते हैं जो पुलिस के असंवृत अंग जैसे ये थाने अथवा सड़कों पर खड़े हुए ये पुलिस कर्मी समाज के समक्ष एक बड़ी भयानक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। डा. शाह कहते हैं :

“आम आदमी की गरिमा की संवैधानिक सुरक्षा एवं सामान्य जन को न्याय दिलाने के कानूनी नियम व कानून की उपस्थिति के बावजूद अपराधी माफियाओं, पूंजीपतियों और राजनेताओं की दबंगई के आगे पुलिस प्रशासन आम लोगों के नैतिक अधिकारों का खुलेआम हनन करता है। हिरासत में मौत की सर्वाधिक घटनाएं अकस्मात घटित नहीं होती है वरन यह हमारी कुंठित मानसिकता का परिणाम है।” पुलिस बल यदि इस

तथ्य का समर्थक है कि उसे निरपराध प्रजाजनों की सेवा के लिए तथा उन्हें रक्षा का आश्रय देने के लिए तैयार किया गया है तो वे सर्वत्र एवं सर्वदा इसी संकल्प को क्रियात्मक रूप प्रदान करते रहेंगे। उनका आचरण वाक्य “न्यायात पथःप्रविचलन्ति पदं न धीराः” ही होगा तथा उन्हें कोई भी आसुरी शक्ति डिगा नहीं पाएगी। जहां तक समाज में पुलिस कीर्ति एवं छवि का प्रश्न है, वह तो स्वतः उज्ज्वल हो उठेगी। थाने, पुलिस संगठन के खुले हुए अंगों---जैसे प्रकट होकर चमचमाने लगेंगे।

पुलिस की कीर्ति वाहिनी पताका को लहराने में हमें जिस स्वच्छंद वायुमंडल से अपेक्षाएं हैं, वे सब धूमिल हो उठती हैं जब हम अपने शासकीय व्यवहार में नेतृत्व का निषेधात्मक रूप अपनाना शुरू कर देते हैं। वरिष्ठ अधिकारी जब कभी अपने अधीनस्थों के प्रति निषेध रूप दंडात्मक कार्रवाई का पक्ष लेकर काम करना शुरू कर देता है जब लोगों में काम के प्रति अरुचि, संवेदशून्यता तथा गलतियां अधिक करने की प्रवृत्ति पनपने लगती है। अतः मेरा विचार है कि दंड के भय से सिकुड़े हुए अधीनस्थों के समक्ष वरिष्ठ अधिकारीगण शंसात्मक दृष्टि से भी उदाहरण प्रस्तुत करने की कोशिश करें तो पुलिस मनोबल में वृद्धि की संभावनाएं बलवती हो उठेगी। केवल दंडात्मक कार्रवाई के भय ने पुलिसजनों को यत्र-तत्र खड़े रहकर अन्यथा उल्टा-सीधा अपशब्दात्मक बकने वाला बना दिया है। वे निराश से लगते हैं। उन्हें कार्यदक्षता के प्रति उत्साहित करने की परमावश्यकता है।

“तुमसे हम और कुछ नहीं कहते, सिर्फ कह दो कि हम तुम्हारे हैं।”

यह एक विडम्बना ही है कि थाने बिकने का आरोप खुलेआम लगाया जाने लगा है। यह स्वीकारोक्ति स्वयं पुलिस अधिकारियों की है। जनता के लिए यह थानों की खरीद-फरोक्त गोपनीय ही है परंतु इस जघन्य शासकीय अपराध का खामियाजा जनता

अवश्य भोगती नजर आती है। यह भ्रष्टाचार की ऊपरी सतह है जहां से वह पुलिस विभाग में साफ तौर पर उतरता हुआ दिखाई देता है। फिर इसके बाद शराब-शबाब की अंधी दौड़ सरकारी गाड़ियों में पुलिस परिवारों की सैर-गलत तरीके से मानव शक्ति का दुरुपयोग आदि सभी कुछ स्पष्ट ही दिखाई देने लगता है, प्रजा को इस दिशा में विभागीय दंड नियोजन की प्रक्रिया को तीक्ष्ण बनाने की आवश्यकता को कौन नकार सकता है? यदि अपराध दंडनीय नहीं होते तो संगठन की मजबूती को ध्वस्त कर देने वाले बन जाते हैं। अतः पुलिस विभागीय संगठन के वरिष्ठ अधिकारी यथा समय इस तथ्य की समीक्षा अवश्य करते रहे।

भ्रष्टाचार जन्य आपराधिकता किसी भी संगठन के लिए उसके अंग-प्रत्यंगों की खुली बदनामी है तथा ऐसा शासकीय असंगत व्यवहार समाज में आक्रोश एवं असंतोष को जन्म देता है। अतः देवी भागवत में इस संदर्भ की अनेक रूप से संस्तुतियां की गई है :

“बिना दंड कथं राज्य करोति जनकः किल,  
धम्मे न बर्तते लोकःदण्डश्चेतन भवेत या दिडक”

भ्रष्टाचार की यह विभागीय बीमारी स्वयं अधिकारियों एवं पुलिस कर्मचारियों द्वारा आत्ममंथन से दूर हो सकती है। अपने चरित्र की श्रेष्ठ गरिमा का ध्यान ही पुलिस विभागीय इस बीमारी को दूर कर पाने में सक्षम है। जैसे पुलिस ट्रेनिंग कालेज प्रथम मुरादाबाद में व्याख्यान देते हुए आत्म चिंतन के कुछ बिंदुओं को प्रशिक्षुओं के सामने रखकर उन्हें कुछ अपने बारे में सोचने की राय दी थी जैसे वे क्रोध एवं द्वेष के स्वयं सर्जक हैं, वे यह भी जानते हैं कि शांति एवं सुरक्षा की सबसे बड़ी आवश्यकता उन्हें ही है। अतः वे इस प्रयत्न में भी शांति एवं सुरक्षा के लिए स्वयं को व्यवस्थित रखते हुए दूसरों की शांति एवं सुरक्षा के लिए कोशिश करते रहें, उपेक्षा, उदासीनता एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता उनके लिए आत्मघाती है।

पुलिस विज्ञान ◀ अक्टूबर-दिसम्बर, 2007

मेरी दृढ़ सम्मति है कि अपराध उन्मूलन के राष्ट्रीय अभियान को आकार प्रदान करने के लिए सर्व प्रथम थानों की सुरक्षा संस्कृति को सामाजिक सोच की प्राथमिकताओं से युक्त करना होगा----हम सभी का यह सामाजिक दायित्व है कि यदि हमें स्वयं के लिए शांति, सुरक्षा एवं व्यवस्था चाहिए तो थानों की व्यवहार प्रथा पर हमें कड़ी निगाह रखनी पड़ेगी। किसी भी कीमत पर थाने अत्याचार, अतिवार, व्यभिचार तथा शोषण के अड्डे न बन पाएं, यह भी जिम्मेदारी सामाजिकों की है, नहीं तो कौन परित्राणाय साधूनाम की आरक्षी तपस्या को शक्ति प्रदान करेगा? थाने यदि खुली लूट एवं व्यभिचार का केंद्र बन गए तो सामाजिकों के सामने पुलिस का खुला रूप बड़ा वीभत्स होगा। क्योंकि यह तथ्य भी सही ही पाया गया है कि अधिकांशतः हम ही अपनी अनभिज्ञताओं तथा बेईमानी से पुलिस को गंदा तथा अराजक बनाते हैं। इस अराजकता का कारण हमारी अपराधी राजनैतिकता भी है।

**संदर्भ :**

1. श्री दफेदार दीक्षित “अंचल” के गीत संग्रह से
2. पुलिस मैग की डायरी कितने पृष्ठ से।
3. पी.टी.सी. प्रथम, मुरादाबाद में आयोजित सेमीनार की स्मारिका से।
4. उत्तर प्रदेश पुलिस पत्रिका में प्रकाशित लेख “मानवाधिकार ऐतिहासिक परिवेश” नामक आलेख से संदर्भित।

दैनिक जागरण

देवी भागवत 1/27/3 से।

दृष्टिकोण प्रकाशन (फर्रूखाबाद) 1993 के संकलन” पुलिस कर्मी एक नागरिक है” से आलेख----डा. महेशनाथ चतुर्वेदी,  
साभार : उत्तर प्रदेश पुलिस पत्रिका।



# कारागार—सुधारात्मक प्रणाली

## सुबोध मेहरोत्रा

डी-501, एस.पी.एस.-II अपार्टमेंट,  
मेन जीटी रोड, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उ.प्र.

प्राचीन काल से ही समाज में अच्छाई के साथ ही बुराई भी सदैव विद्यमान रही है। मनुष्यों को हमेशा अच्छा कार्य करने की सीख दी जाती रही है परंतु वह कभी-कभी बुरे काम विभिन्न कारणों से करता ही रहा है। रामायण, महाभारत आदि में भी विभिन्न लड़ाइयां केवल अच्छाई-बुराई के कारण ही लड़ी गई थीं। अच्छाई हमेशा जीतती है और इससे समाज में अमन, चैन व शांति व्यवस्था कायम होती है। जब भी समाज में बुराई बढ़ जाती है तो उन्हें रोकने के लिए समाज विभिन्न नियमों, कानूनों की मदद से रोकने का प्रयत्न करता है। यह केवल एक राष्ट्र की ही नहीं अपितु प्रत्येक राष्ट्र की एक सामान्य गतिविधि होती है। समाज में विभिन्न अपराधों के लिए विभिन्न प्रकार की सजाओं के प्रावधान किए गए हैं।

आज संसार के सभी देशों में कैदियों अथवा अपराधियों को जिन जगहों पर रखा जाता है उन्हें कारागार या जेल कहा जाता है। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण का जन्म भी एक बंदीगृह में ही हुआ था जिसे कारागार भी कहा जाता था। भारत में कारागारों का अस्तित्व 5000 वर्षों पुराना है। चाणक्य ने अपनी पुस्तक “अर्थशास्त्र” में लिखा है कि प्राचीन काल में पुराने किलों को कारागार के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। उनके हाथों और पैरों में बेड़ियां पहनाई जाती थी। आचार्य चाणक्य ने कारागारों को मुख्य सड़कों के किनारे बनाने की सिफारिश की थी ताकि वहां से

आने जाने वाले लोग अपराधियों की स्थिति देखकर कुछ सबक ले सकें।

प्राचीन समय में भारत में अपराधियों को दंड तो दिया जाता था परंतु इसके पीछे उनका उद्देश्य अपराधियों को प्रायश्चित्त करवाना होता था। सभी प्रकार के अपराधों के लिए फांसी की सजा नहीं दी जाती थी। कुछ अपराधियों को कैदखानों/कारागारों में रखा जाता था। 16वीं शताब्दी तक पश्चिम के देशों में अपराधियों को अति क्रूर दंड दिए जाते थे। कुछ विचारकों ने अपराधियों को अमानुषिक दंड देने के खिलाफ आवाज उठाई और उसी का नतीजा है कि दंड व्यवस्था में कुछ सुधार प्रारंभ हो गए। कारागार प्रणाली ने 16वीं शताब्दी से शुरू होकर 19वीं शताब्दी तक आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया। अतः आज समाज में अपराधियों को जहां पर रखा जाता है उस जगह को जेल अथवा कारागार कहा जाता है। उनको इनमें एक निर्धारित अवधि अथवा ताउम्र रखा जाता है और वहां पर उनमें सुधार लाने के लगातार प्रयास किए जाते हैं। कारागार अधिनियम 1894 के अनुसार बंदीगृह राज्य सरकार द्वारा परिभाषित वह स्थान है जहां बंदियों को स्थाई/अस्थायी रूप से रखा जाता है।

## कारागार के मुख्य उद्देश्य

कारागार दंड व्यवस्था से जुड़ी एक ऐसी संस्था है जिसका संचालन सरकार करती है। वर्तमान समय में दंड की उपचारात्मक एवं सुधारात्मक विचारधारा का प्रभाव इन कारागारों की गतिविधियों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। प्रसिद्ध अपराध वैज्ञानिक सदरलैण्ड एवं क्रेसी ने ‘अपराधशास्त्र के सिद्धांत’ में कारागारों के निम्न उद्देश्य दर्शाए गए हैं :

(1) जेल कार्यों में कैदियों के व्यवहार को सुधारना शामिल है। आजकल समाज सुधार, पुनर्वास और अपराधियों के उपचार पर विशेष ध्यान देकर उनकी

आपराधिक मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना होता है ताकि वे समाज में पुनः अपराध न कर सकें। जेल में अपराधियों को ऐसे सुधार करके उनसे अच्छे व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

(2) कोई भी समाज तब तक अच्छा एवं सभ्य नहीं रह सकता जब तक कि उसमें अपराधी होंगे। कारागार के माध्यम से अपराधियों को एक निश्चित अवधि के लिए समाज से अलग कर दिया जाता है कि वे उस निश्चित अवधि तक अपराध न कर सकें और इस तरह उनके व्यवहार को सुधारा जा सकता है।

(3) जब समाज अपराधियों से त्रस्त रहता है तो उनके पकड़े जाने पर समाज में प्रतिशोध की भावना भी बनी रहती है। अतः यही कारण है कि अपराधियों को जेल में चारदीवारी के अंदर रखा जाता है।

(4) कारागार पद्धति से अपराध को कम करने का प्रयास किया जाता है। कारागार में अपराधियों को सुधारने एवं उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का भी प्रयास किया जाता है ताकि दंड की अवधि समाप्त होने पर वे एक सामान्य नागरिक का जीवन व्यतीत कर सकें और समाज में अपना उचित स्थान हासिल कर सकें।

इसके विपरीत कुछ अपराध वैज्ञानिकों का मानना है कि चारदीवारी अपराधियों को सुधारने की बजाए उन्हें और गंभीर अपराधी बना देती है जिसमें वह निश्चित अवधि व्यतीत करने के बाद और भी अधिक कड़ी आपराधिक गतिविधियों को अंजाम देने लगता है क्योंकि जेल में रहकर वह एक खूंखार अपराधी से मिलता है और उसके मन में बड़े से बड़ा अपराध करने का ख्याल आता है। वास्तव में देखा जाए तो उपर्युक्त बात एक दम सत्य नहीं है क्योंकि जेल तो ऐसी जगह है जहां पर अपराधी अपने अपराध की सजा तो अवश्य पाता है परंतु उसके साथ-साथ उसे सुधारने का भी हर संभव प्रयास किया जाता है ताकि वह जेल से बाहर आकर एक अच्छा नागरिक बने। आजकल जेल में अपराधियों

को विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं जिससे वह जेल से छूटने के बाद अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण आसानी से कर सके। आज मानवाधिकारों के विभिन्न संस्थान होने से जेल में कैदियों के साथ-भी अमानवीय व्यवहार नहीं किया जाता है इसलिए आजकल जेलों को सुधार संस्थाएं भी कहा जा सकता है। इन अपराधियों को विशेष प्रकार के बीमार मानकर उनका इन कारागारों में उपचार किया जाता है। महात्मा गांधी ने भी इन अपराधियों के बारे में ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। जेलकर्मियों का दृष्टिकोण एवं मनोबल चिकित्सक एवं नर्सों की तरह ही होना चाहिए। जेल में बंद कैदियों को यह भरोसा दिलाया जाना चाहिए कि जेलकर्मी उनके अपनी सहयोगी हैं और उनके स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति में सहायता के लिए ही हैं। अतः आजकल जेलों का प्रमुख उद्देश्य कैदियों का सुधार एवं उनका पुनर्वास है।

वास्तव में दंड और कारावास का मूल उद्देश्य यही है कि जो अपराधी कारावास में किसी अपराध के संबंध में सजा काट रहा है वह पुनः उस अपराध को न करे। यह प्रायश्चित्त करे और उसका आत्मसुधार हो ताकि दंड भोगने के बाद वह एक सुसभ्य नागरिक बन सके। समाज को अपराध से दूर रखने के लिए और अपराधों का निवारण करने के लिए जेल व्यवस्था अति आवश्यक है। जेल में अपराधियों को समाज से अलग रखकर उनकी दंड समय सीमा के दौरान अनेक सुधारात्मक उपाय किए जाते हैं। प्रो. एन. व्ही के अनुसार, “सजा का अंतिम उद्देश्य वास्तव में अपराधियों को कारागार व्यवस्था के माध्यम से समाज से अलग रखते हुए नियंत्रित करना है।” आजकल जो सुधारात्मक प्रणालियां अपनाई जाती हैं वे वास्तव में प्राचीन समय में होने वाली सजा जिनमें कैदियों को काल कोठरियों में बंद कर दिया जाता था, से काफी सही हैं। यह फिर भी मानवता का परिचय देती हैं। निष्कर्षतः यह कहा

जा सकता है कि कारागार व्यवस्था के मुख्य उद्देश्य अपराधियों को सुधारना, अपराधों में कमी करते हुए अपराधियों के पुनर्वास को सुनिश्चित करना है।

### कारागार व्यवस्था का आरंभ

प्राचीन समय में बंदीगृह अत्यंत कष्टकारक हुआ करते थे। न हवा, न प्रकाश न ही पीने के लिए पानी। प्रो. एम. जे. सेयना ने “सोसाइटी एंड दि क्रिमिनल” में लिखा है कि 16वीं शताब्दी से पूर्व बंदीगृह बहुत कष्टकारक रहे हैं। उनमें स्त्री, पुरुषों व बच्चों को एक साथ चूहों और सुअरों की भांति बाड़ों अर्थात् छोटी कोठरियों में रखा जाता था। कारागार से रहित होने के कारण कारागार नहीं कहा जा सकता है। कारागार की स्थापना सन् 1597 से आरंभ हुई थी। इससे पहले बंदीगृह केवल एक प्रकाशहीन, शीत और सीलनयुक्त, कीटानुयुक्त, गंदे और कब्र के समान पक्के कमरों की तरह होते थे। 19वीं शताब्दी के मध्य तक जेल सुधारों की ओर काफी ध्यान दिया जाने लगा। आज के मौजूद आधुनिक कारावास लगभग एक शताब्दी के अथक सुधार के ही परिणाम हैं।

### इंग्लैंड में कारागार व्यवस्था का आरंभ

18वीं शताब्दी से पूर्व तक यहां भी अपराधियों को बर्बर दंड देने की परंपरा थी। विभिन्न विद्वानों ने अपराधियों पर होने वाले कठोर, अमानुषिक व बर्बर दंड प्रावधानों का विरोध किया। इस प्रकार इन स्थितियों से निपटने के प्रयास के फलस्वरूप ईसाई धर्म गुरुओं ने भी अपराधियों के साथ दयापूर्ण एवं मानवीय व्यवहार की मांग की। इसके परिणामस्वरूप कारागार में थोड़ा-थोड़ा सुधार आना आरंभ हुआ। सन् 1778 में इंग्लैंड में एक कानून बनाकर कारावासियों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए उनको श्रम कार्यों में लगाया जाता था। इसके बाद 1832 में अपराधियों को निश्चित

अंतरालों में अपने सगे-संबंधियों एवं इच्छुक व्यक्तियों से मिलने की सुविधा प्रदान की गई। कारावासों में कैदियों की बढ़ती संख्या को कम करने के लिए उन्हें देश-निकाला दिया जाने लगा और अन्य सुदूर देशों में निष्कासित किया जाने लगा। इंग्लैंड के कारागारों में सुधार करने की दिशा में किए गए कार्यों में सर लाइनेस फक्स का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

### अमेरिका में कारागार व्यवस्था का आरंभ

अमेरिका में 18वीं शताब्दी में कैदियों को बहुत कड़ी सजा दी जाती थी और उन्हें जंजीरों में जकड़ा जाता था। उनके गले, हाथों व पैरों में लोहे की जंजीरें डाली जाती थी। अमेरिका में 1775 के आस पास कारावास व्यवस्था में सुधार होना आरंभ हुआ। सबसे पहले इन कैदियों को दिन में मौन रखकर उनसे श्रम करवाने और रात के समय कोठरियों में अलग रखना प्रारंभ किया गया। उन पर डर दिखाकर काम करवाया जाता था। एडविन सदरलैंड और क्रेसी ने “द प्रिंसिपल ऑफ क्रिमिनोलॉजी” में लिखा है कि मौन रखवाकर अलग रखने व श्रम कार्य करवाने जैसे कार्यों को समाप्त कर दिया गया। यह सब एक विधायी आयोग की सिफारिशों पर हुआ। इसके बाद 19वीं शताब्दी में अमेरिका के विभिन्न राज्यों के कारागारों में अनेक सुधार कार्य किए गए। वहां पर नए अपराधियों एवं अभ्यस्त अपराधियों, व्यस्क और अवयस्क अपराधियों को अलग-अलग रखा जाने लगा। इनको कुटीर उद्योग एवं शिल्पकारिता के लिए प्रशिक्षित किया जाने लगा ताकि वे कुशल कारीगर अथवा शिल्पकार बन सकें। वे शिल्पकार अथवा कारीगर बनकर जेल से बाहर आने पर समाज द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिया जाएगा। अपराधियों को उपयोगी उत्पादक कार्यों के प्रशिक्षण के उपरांत राज्यों की आय में वृद्धि होने लगी और कारागार को एक उपयोगी संस्थान के रूप में जाना जाने लगा।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में कैदियों की स्थिति को सुधारने के लिए विशेष प्रयास किए गए।

### भारत में कारागार व्यवस्था का आरंभ

भारत में भी कैदियों को बंदीगृहों में ही रखा जाता था हालांकि बंदीगृहों की विस्तृत विवेचना प्राचीन भारतीय इतिहास में भी उपलब्ध नहीं है। वैदिक एवं लौकिक साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में कारागार व्यवस्था के विकास का सीधा संबंध राज व्यवस्था से रहा है। वहां उनको भारी वजन की सांकलों में बांधकर कोड़े लगाए जाते थे। प्रसिद्ध अपराधशास्त्री डा. एन.बी.सिंह भारत में कारागार व्यवस्था को राजव्यवस्था में जोड़ते हैं। उनके मतानुसार सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के समय 300 ई.पू. में कैदियों को कारागारों में रखा जाता था। इस तरह वैदिक काल से ही यह व्यवस्था चली आ रही है। दंड के दृष्टिकोण से उनके हाथों और पैरों में बेड़ियां, जंजीरें व हथकड़ियां डाली जाती थीं। इस तरह अपराध के साथ ही दंड की अवधारणा का भी विकास होता गया और शुकनीति में आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान मिलता है। अपनी पुस्तक “अर्थशास्त्र” में कौटिल्य (चाणक्य) ने न केवल कारागार व्यवस्था का वर्णन किया है अपितु कारागारों के निर्णय के बारे में भी अपने विचार लिखे हैं। उस समय भी विभिन्न अवसरों अर्थात् राजा के जन्म दिन, पूर्णिमा, युद्ध में विजय, राज्याभिषेक, राजकुमार के जन्म दिन आदि अवसरों पर कैदियों को मुक्त किया जाता था। कौटिल्य की दंड व्यवस्था सम्राट अशोक के शासनकाल में पाई जाती है। सम्राट हर्षवर्धन के समय राजद्रोहियों को आजीवन कारावास की सजा दी जाती थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी वर्णन किया है कि राजद्रोही को आजीवन कारावास की सजा दी जाती थी। अंग-विच्छेद, असहनीय यातनाएं, दीवार में जिंदा चिनवा देने एवं फांसी जैसे प्रतिशोधात्मक दंड दिए जाते थे।

### भारत की कारागार व्यवस्था में सुधार के प्रयास

अधिकतर देशों में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुधारात्मक उपाय किए जाने लगे। अमेरिका, ब्रिटेन, बर्मा, स्काटलैंड, हांगकांग आदि में भी इसी अवधि के दौरान कारागार व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए जिससे कैदियों में सुधार किया जा सके। भारतवासियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए सन् 1838 में “प्रिजन इंक्वायरी कमेटी” का गठन किया। इस समिति की सिफारिश पर कुछ कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। इसके कुछ वर्षों बाद ही सन् 1855 में भारत में स्थित कारागारों की व्यवस्था को देखने के लिए “इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन्स” को नियुक्त किया गया। कुछ समय पश्चात् सन् 1866 में प्रत्येक कारागार के लिए एक चिकित्सक की भी व्यवस्था की गई ताकि कैदियों के स्वास्थ्य की समय-समय पर जांच की जा सके और उनकी बीमारियों का इलाज किया जा सके। भारत में भारतीय विधि आयोग का भी गठन किया गया जिसकी सिफारिशों के उपरांत भारत में संपूर्ण देश के लिए विधि और दंड की एक समान व्यवस्था लागू की गई। 1859 में व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1860 में भारतीय दंड संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता लागू हुई। देश में स्थित कारागारों का प्रशासन जिला मजिस्ट्रेटों के निर्देशन में होता था। उसके बाद भारतीय कारागार अधिनियम, 1894 में पारित हुआ और इसके अनुसार प्रत्येक जेल के लिए एक जेल अधीक्षक, एक चिकित्सक व एक जेलर होना अनिवार्य कर दिया गया। भारत में लार्ड मैकाले के आने के बाद जेल सुधारों में काफी प्रयास हुए।

कैदियों को आयु-लिंग, अपराध की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग रखा जाने लगा। 1919 में “भारतीय जेल समिति” का गठन हुआ। इस समिति ने काफी जेलों का अध्ययन किया और अपनी रिपोर्ट में कहा कि कैदियों के सुधार आदर्श व्यवहार एवं सभ्य नागरिक बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर



जोर दिया गया। इस समिति ने जेल में सुशिक्षित, योग्य, आदर्श एवं क्रियाशील जेल कर्मियों को जेल में रहने की सिफारिश की जिससे कैदियों के जीवन में मौलिकता को बढ़ावा दिया जाए। समिति ने जेल में धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा एवं उद्योगों के प्रशिक्षण पर जोर दिया। सभी केंद्रीय एवं राज्य कारागारों में शिक्षा की व्यवस्था, पुस्तकालय की व्यवस्था, पौष्टिक भोजन, अच्छे वस्त्र एवं बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं दिए जाने की सिफारिश की। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के जेल सुधार विशेषज्ञ एवं प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक डा. वाल्टर सी. रैकलैस को भारत में बुलाया गया। उन्होंने “सेंट्रल ब्यूरो ऑफ करेक्शनल सर्विसिज” स्थापित करने और जेल मैनुअल में संशोधन किए जाने का भी परामर्श दिया। भारत में इस संबंध में समिति ने 1959 में अपनी रिपोर्ट में कहा था कि---

1. सभी जेलों के स्तर में सुधार किया जाए।
2. जेल प्रशासन और बंदियों की समस्याओं से संबंधित नियमों की जांच की जाए
3. जेलों में कृषि, उद्योग, दस्तकारी को शामिल किया जाए।
4. जेलों की जांच उच्च अधिकारियों द्वारा गुप्त रूप से की जाए।
5. अभ्यस्त अपराधियों के व्यवहार को सुधारने का विशेष प्रयास किया जाए।
6. महिलाओं के लिए रक्षागृहों की व्यवस्था की जाए।
7. धार्मिक, नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
8. कैदियों के स्वास्थ्य एवं मनोरंजन का ध्यान रखा जाए
9. कैदियों से मिलने की व्यवस्था को सुगम बनाया जाए।
10. यदि कैदियों के व्यवहार में सुधार आए तो उनकी सजा कम की जाए।

11. जेल में कल्याण अधिकारियों को नियुक्ति किया जाए।

इस संबंध में भारत सरकार ने 1961 में सुधारात्मक सेवाओं को केंद्रीय ब्यूरो नई दिल्ली में स्थापित किया जिसे वर्तमान में “राष्ट्रीय सामाजिक प्रतिरक्षा संस्थान” कहा जाता है। इसके बाद एक “सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड” की स्थापना की गई। 1979 में भारत में जेल प्रशासन में सुधार की स्थापना हुई। 1993 में तिहाड़ जेल, नई दिल्ली की महानिरीक्षक बनी डा. किरन बेदी को भी जेल सुधारों के लिए जाना जाता है। उन्होंने जेलकर्मियों को कैदियों से व्यवहार करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित करवाया। उन्होंने ही जेल में पुस्तकों, अखबारों, घड़ी एवं रेडियो जैसे बुनियादी चीजों को कैदियों को उपलब्ध कराने के आदेश जारी किए थे जिससे कैदियों में रोष की भावना कम हुई और उनका व्यवहार सुधरने लगा। वहीं पर उन्होंने विपासना नामक योग संस्था की भी शुरुआत की थी जो आज काफी प्रसिद्ध है। आज भारत में कैदियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता है। उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन का पूरा-पूरा ख्याल रखा जाता है। इन चीजों से उनके व्यवहार में सुधार आ रहा है जिसके परिणामस्वरूप जेलों में उन्हें मुक्त अथवा उनकी सजा कम कर दी जाती है। आजकल सभी पुरुष एवं महिला कैदियों को उच्च शिक्षा प्राप्ति जैसे लक्ष्यों को पाना काफी आसान हो गया है। वहां पर उन्हें विभिन्न प्रकार के कोर्स जैसे कंप्यूटर, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, ब्यूटीपार्लर, लेखन कौशल कराए जा रहे हैं ताकि वे जेल से छूट कर एक अच्छे एवं सभ्य नागरिक का जीवन व्यतीत कर सकें और समाज में फिर से घुल-मिल जाएं। इन सब चीजों के बाद कैदियों के व्यवहार में काफी परिवर्तन हुए।



# “पुलिस संगठनों की महत्ता बनाम मानवाधिकार संगठन”

रेखा रानी कपूर

डब्ल्यू जैड बी-37, कृष्णा पार्क एक्सटेंशन, पी ओ तिलक  
नगर गली नं. 10 नई दिल्ली-18

वर्तमान समय में मानवाधिकार की अवधारणा अत्यधिक प्रासंगिक है। विभिन्न मानवाधिकार संगठनों द्वारा इन अधिकारों की रक्षा के समर्थन में और हनन के विरोध में आवाज उठाई जाती रही है। एमनेस्टी इंटरनेशनल, एशिया वाच, पीपल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज़ आदि इनमें प्रमुख हैं। इसके अलावा अनेक अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय आयोग, महिला-संगठन व संचार माध्यम भी मानवाधिकारों के प्रति जागरूक हैं। आज के दौर में ‘कल्याणकारी राज्य’ की व्यवस्था के नाते राज्य की सभी कार्यपालक एजेंसियों का प्राथमिक कार्य जनकल्याण करना है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों का हनन करने वाले देशों का बहिष्कार अन्य देशों और संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा है। ऐसी स्थिति में मानवाधिकारों का महत्व बढ़ता जा रहा है।

मानवाधिकारों की रक्षा का दायित्व सबसे ज्यादा पुलिस संगठनों और सुरक्षा बलों पर रहा है साथ ही इनके द्वारा जनता के मानवाधिकार हनन की संभावना भी सबसे ज्यादा है और मानवाधिकारों के समर्थकों के आरोपों का निशाना भी ये ही होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से मानवाधिकार संगठनों के द्वारा मानवाधिकार हनन की जिम्मेदारी सुरक्षा-बलों और पुलिस-संगठनों पर थोपी जा रही है, ऐसा लगता है

कि मानवाधिकारों की रक्षा के सवाल पर मानवाधिकार संगठन और पुलिस आमने-सामने खड़े हो गए हैं। इसी संदर्भ में उन पुलिस-संगठनों की चर्चा करना अपरिहार्य होगा जो कि अपने कार्य के दौरान जन-संपर्क में आते हैं।

**राज्य-पुलिस :** भारत के प्रत्येक राज्य में राज्य पुलिस का विभाग गृह विभाग के अधीन कार्य करता है। पुलिस विभाग का सरकार से संबंध गृहसचिव के माध्यम से होता है। पुलिस विभाग का प्रमुख महानिदेशक होता है। राज्य पुलिस मुख्यालय में प्रशासन, गुप्तचर शाखा, सी.आई.डी. प्रशिक्षण आदि के विभाग होते हैं। रेंज स्तर पर उप-महानिदेशक व जिला-स्तर पर पुलिस-अधीक्षक कार्य करते हैं। इनके नीचे वृत्त, थाना व चौकियां होती हैं। ग्रामीण पुलिस में कुछ राज्यों में मुखिया व चौकीदार होते हैं। प्रत्येक राज्य की अलग सशस्त्र पुलिस भी होती है।

**केंद्रीय पुलिस संगठन :** भारतीय संविधान में सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 65 के अनुसार पुलिस प्रशिक्षण और अन्वेषण में वैज्ञानिक और तकनीकी सहायता या अपराध की खोज केंद्र के कार्यक्षेत्र के अधीन आता है। तदनुसार केंद्रीय सरकार ने राज्यों की पुलिस के लाभार्थ देश में गौरवशाली राष्ट्रीय पुलिस अकादमी सहित कई केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान खोले हैं।

**केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो : सी.बी.आई :** सी.बी.आई. के नाम से केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की स्थापना विशेष रूप से महत्वपूर्ण मामलों, खासतौर पर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी आदि के ऐसे मामलों की जांच के लिए एक एजेंसी के रूप में गृह-मंत्रालय के अधीन 1963 में हुई, जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव और विस्तार कई राज्यों में है।

सामान्य तौर पर केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो सभी अपराध मामलों में एक केंद्रीय समन्वयकारी एजेंसी के

रूप में कार्य करता है। सी.बी.आई. भारत सरकार के कार्मिक विभाग का एक संबद्ध कार्यालय है। यह एक निदेशक के अधीन है जो साथ ही डी.एस.पी.ई. एक्ट के अनुसार दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना के महानिरीक्षक के रूप में भी पदनामित है।

सी.बी.आई का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। दिल्ली और अन्य राज्य मुख्यालयों में 19 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता और मद्रास की चार महानगरीय ब्रांच एक-एक उपमहानिरीक्षक के रैंक के अधिकारी के अधीन है और अन्य ब्रांच पुलिस अधीक्षकों के अधीन।

समन्वय प्रभाग का इंटरपोल विंग विदेशों में किए जाने वाले जांच-पड़ताल में राज्य-सरकारों की सहायता करता है। इस प्रभाग का अपराध रिकार्ड विंग चुराए गए और पुनः प्राप्त किए गए वस्तुओं जैसे----आग्नेय अस्त्र, कार और पुरातत्व वस्तुओं की पहचान करने में राज्य पुलिस की सहायता करता है।

**सीमा सुरक्षा बल : बी.एस.एफ. :** पाकिस्तान युद्ध के बाद देश की अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं की निगरानी के लिए सीमा सुरक्षा बल 1965 में बनाया गया था। इससे पहले मुख्य रूप से विभिन्न राज्यों से उधार पर ली गई सशस्त्र पुलिस बटालियनें इस कार्य को करती थी। अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा केंद्रीय सरकार की जिम्मेदारी है, इसलिए इस कार्य के लिए एक अलग बल स्थापित करने का निर्णय लिया गया। सीमाओं पर रहने वाले व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने के अलावा सीमा सुरक्षा बल को सीमा पर होने वाले अपराध, भारतीय राज्य क्षेत्र में अनाधिकृत रूप से आने-जाने, तस्करी तथा सभी अन्य गैर कानूनी गतिविधियों को रोकने की ड्यूटियां भी दी गई हैं। संसद के एक अधिनियम के अधीन इस बल को बनाया गया है और इसके कार्य निर्धारित किए गए हैं। इसके कार्मिकों को सीमावर्ती निर्धारित बैल्ट के भीतर हिरासत में लेने,

तलाशी लेने और जब्ती करने के कुछ अधिकार दिए गए हैं जो एक राज्य से दूसरे राज्य में अलग-अलग हैं।

सीमा सुरक्षा बल का प्रधान महानिदेशक है और इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। वह इस बल के प्रशासन और अनुशासन तथा इसके संक्रियात्मक कार्य के लिए उत्तरदायी है। इसका मुख्यालय कई निदेशालयों में विभाजित है, जिनमें इस प्रकार विभाजन है----

1. संक्रिया 2. संचार 3. प्रशिक्षण 4. प्रशासन 5. संगठन 6. रसद 7. लेखा 8. सामान्य। बल के आठ सीमांत मुख्यालय हैं----जम्मू, कश्मीर, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तरी बंगाल, दक्षिणी बंगाल, असम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम। यहां पर प्रभारी आई.जी. होते हैं। सेक्टर हैडक्वार्टर पर डी.आई.जी. होते हैं व उसके नीचे बटालियन हैडक्वार्टर होता है जिसके प्रभारी कमांडेंट होते हैं। सीमा सुरक्षा बल में वाटर विंग भी होती है। ऊंट, घोड़ों तथा मोटर-साइकिलों द्वारा गश्त की जाती है और मचान व ओ.पी. टावरों द्वारा निगरानी रखी जाती है। आंतरिक सुरक्षा के तहत सिविल उपद्रवों के दौरान बल राज्यों को सहायता देता है। इसकी प्रक्रिया 'आंतरिक सुरक्षा ड्यूटी में सीमा सुरक्षा बल का प्रयोग' नामक मैनुअल द्वारा तय की जाती है। पंजाब व जम्मू-कश्मीर में इसने अच्छा कार्य किया है। सीमा सुरक्षा बल में 1994 के आंकड़ों के अनुसार 156 बटालियन कार्यरत हैं।

**केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल :** सी.आर.पी.एफ.---- क्राउन पुलिस 1939 में बनाई गई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1949 में इसका नाम बदल कर इसे केंद्रीय पुलिस बल नाम दिया गया। इस बल की 60 बटालियनें हैं। यह बल 'केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949' के अधीन बनाया गया था और गृह-मंत्रालय भारत सरकार के अधीन कार्य करता है। आरंभ में इसका उद्देश्य भारतीय राज्यों को सुरक्षा प्रदान करना

और उन्हें राजनीतिक कठिनाइयों से बचाना था। अब इस बल का प्रयोग व्यापक रूप से आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने और देश के किसी भी भाग में अशांति को दबाने हेतु किया जाता है। बल में त्वरित कार्य बल (Rapid Action Force RAF) इसी उद्देश्य हेतु बनाया गया है। इसकी समग्र कमान महानिदेशक के अधीन है। महानिदेशक का कार्यालय महानिदेशालय दिल्ली में है। इसके निम्नलिखित विंग हैं और प्रत्येक एक उपनिदेशक के अधीन है---1. प्रशासन 2. रसद 3. प्रशिक्षण 4. कार्य 5. व संचार।

फील्ड कमान के प्रयोजन के लिए बल को चार सैक्टरों में बांटा गया है। प्रत्येक सैक्टर एक पुलिस महानिरीक्षक के अधीन है। इसके मुख्यालय दिल्ली, कलकत्ता, हैदराबाद व शिलांग में है।

उपद्रवग्रस्त क्षेत्र में शांति बहाल करने में और कानून तथा व्यवस्था की कठिन परिस्थितियों के दौरान राज्यों की सहायता के अलावा बल ने पश्चिम बंगाल में नक्सलवादियों तथा नगालैंड व मिजोरम में आतंकवादियों के खिलाफ महत्वपूर्ण आपरेशन किए हैं। सांप्रदायिक दंगों व आतंकवाद से निपटने तथा 1954-55 में चंबल घाटी में डकैती उन्मूलन के क्षेत्र में बल ने सहायनीय कार्य किया है।

**भारत-तिब्बत सीमा पुलिस---- I.T.B.P. :** 1962 में देश की उत्तर सीमा पर हुई चीन के साथ युद्ध की घटनाओं के बाद भारत-तिब्बत सीमा पुलिस बल बनाया गया। इस समय भारत-तिब्बत सीमा पुलिस जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, तीन राज्यों में तैनात की गई है। यह उत्तरी सीमाओं पर राष्ट्र की सुरक्षा तंत्र के एक भाग के रूप में कार्य करती है।

भारत-तिब्बत सीमा पुलिस को संघ के सशस्त्र बल के रूप में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम के अधीन बनाया गया है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश के तीन राज्यों में से प्रत्येक राज्य में

बल के प्रभारी अधिकारी उप-महानिरीक्षक हैं। महानिदेशक दिल्ली स्थित अपने मुख्यालय में रहते हैं।

भारत तिब्बत सीमा पुलिस उत्तरी सीमाओं के उन दूर-दराज के क्षेत्रों में स्थानीय जनता को डाक्टरी और शिक्षा संबंधी सुविधाएं प्रदान कर आश्चर्यजनक जन-संपर्क का कार्य कर रहा है। जहां स्थानीय प्रशासन ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था करने में असमर्थ है। प्राकृतिक विपदाओं में भी भारत-तिब्बत सीमा पुलिस ने सदा ही स्थानीय लोगों और प्रशासन की बहुमूल्य सहायता की है। पर्वतारोहण में इस बल के प्रशासनीय कीर्तिमान हैं। बल में कुल 29 बटालियनें हैं।

### **केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल-सी.आई.एस.**

**एफ. :** देश में महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रतिष्ठानों की सुरक्षा के लिए, खासतौर पर केंद्रीय सरकार के स्वामित्व के उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की सुरक्षा हेतु 1969 में औद्योगिक सुरक्षा बल बनाया गया।

केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल सी.आई.एस.एफ. एक्ट 1968 के अधीन कार्य करता है। बल पूर्णतः सशस्त्र है और गृह-मंत्रालय के तहत कार्य करता है। बल को वायरलैस, फैक्स इत्यादि सुविधाएं प्राप्त हैं और इसके अधिकारी स्टील प्लांटों, बी.बी.सी.डाल, झरिया और एच.ई.सी. रांची जैसे बड़े प्रतिष्ठानों के सुरक्षा इंचार्ज हैं। बल में 7 बटालियन हैं।

### **आसूचना ब्यूरो---- Intelligence Bureau :**

नवंबर, 1920 में आसूचना ब्यूरो निदेशालय के रूप में विभाग का पुनर्गठन किया गया था और आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के बारे में आसूचना एकत्रित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। 1930 तक आसूचना ब्यूरो पर संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सीमा की सुरक्षा के बारे में सूचना देने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

आसूचना ब्यूरो मुख्यालय दिल्ली में है। निदेशक इसका अध्यक्ष है। यह विशेषतः सूचना एकत्रित करने और उनका विश्लेषण करने वाली एजेंसी के रूप में

कार्य करती है।

कुछ अन्य केंद्रीय पुलिस संगठन भी हैं। पुलिस अनुसंधान तथा विकास ब्यूरो और रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (RAW) जिनमें प्रमुख हैं। तीन केंद्रीय विधि विज्ञान प्रयोगशाला हैदराबाद, कलकत्ता व नई दिल्ली में है। केंद्रीय गुप्तचर प्रशिक्षण स्कूल C.D.T.S. कलकत्ता, हैदराबाद व चंडीगढ़ में है।

उपर्युक्त पुलिस संगठन अपने कार्यों यथा-अपराध को निर्यात्रित करने, दंगों से निपटने, आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में कानून-व्यवस्था लागू करने आदि को अंजाम देते हुए अपराधियों व जनता के संपर्क में आते हैं। जाहिर है कि इन कामों को करते समय उन्हें बल का प्रयोग करना पड़ता है, जो कि कभी-कभी आवश्यकता से ज्यादा भी हो सकता है। लेकिन मानवाधिकार संगठन इन पर ज्यादाती करने और मानवाधिकार हनन का आरोप लगाते रहे हैं। स्थापित संस्थाओं द्वारा, पुलिस बलों द्वारा किए गए मानवाधिकार हनन की जांच की जाती है व उस पर समुचित कार्रवाही की जाती है।

**राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग :** इस आयोग की स्थापना 12 अक्टूबर, 1993 को की गई थी। मानवाधिकार हनन के आरोपों की जांच के अलावा यह मानवाधिकार की रक्षा के उपायों की समीक्षा व सिफारिश भी करता है। इन अधिकारों के बारे में जानकारी देना और इस कार्य में लगकर गैर-सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन देना भी इसके महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है।

आयोग ने अपनी 1993-94 की रिपोर्ट में सीमा सुरक्षा बल द्वारा 1 नवंबर, 1993 को जम्मू-कश्मीर में बिज बहेरा के पास 60 व्यक्तियों को गोली मारकर मारने के बारे में तथ्य दिए हैं। आयोग ने दोषी अधिकारियों के विरुद्ध मुकद्मा चलाने व पीड़ितों को अंतरिम मुआवजा देने की सिफारिश की, जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया।

आयोग ने 5 नवंबर, 1993 को मेघालय के सोहरा पुलिस थाने में श्री खेम खासी आर्ट की हिरासत में मृत्यु व फायरिंग की जांच करवाई। दोषी अधिकारियों के खिलाफ मुकदमा दर्ज किया गया और मृतक के परिजनों को 50,000/- रुपये की सहायता दिलवाई गई।

दिल्ली, पांडिचेरी, तमिलनाडु आदि में पुलिस हिरासत में मृत्यु की जांच कराई गई व संबंधित पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाही की गई।

वर्ष 1993-94 की रिपोर्ट के अनुसार 496 मामले दर्ज किए गए, जिनमें से 174 मामले आगे कार्रवाही के लिए स्वीकार किए गए और 274 रद्द कर दिए गए। 48 मामलों का अन्य फोरम में उपचार उपलब्ध होने की वजह से शिकायतें निपटा दी। इस प्रकार यह साबित होता है कि आयोग के पास आए 55 प्रतिशत मामले आधारहीन पाए गए।

**एमनेस्टी इंटरनेशनल :** यह एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है जो जर्मनी में स्थापित की गई थी। इसका मुख्यालय लंदन में है। मानवाधिकार हनन से संबंधित मामलों में यह अपने स्तर पर जांच करती है और परिणाम संबंधित देश की सरकार को भेजती है और प्रकाशित भी करवाती है। 1984 में सिख विरोधी दंगों के बारे में संस्था ने जोर-शोर से प्रचारित किया था कि दिल्ली व अन्य स्थानों पर 2987 सिख मारे गए व पुलिस अधिकारियों ने या तो इसमें मदद की या कार्रवाही नहीं की। पुलिस के संबंध में की गई शिकायत अभी तक न्यायालय में साबित नहीं हो पाई है।

ऑपरेशन ब्लू-स्टार (2 जून से 6 जून, 1984) के दौरान गिरफ्तार किए गए 376 सिखों को जोधपुर जेल में रखे जाने के संबंध में संस्था ने रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इन सबके खिलाफ अभियोग लगा कर मुकदमा चलाया गया है।

गुजरात में छात्र-आंदोलन के साथ सख्ती किए

जाने संबंधी रिपोर्ट एमनैस्टी इंटरनेशनल ने प्रकाशित की है।

मार्च----1993 में बंबई में बम-विस्फोटों के बाद पुलिस कार्रवाही में यातना व गैर-कानूनी हिरासत के आरोप भी संस्था ने लगाए थे। हालांकि भारत के मानवाधिकारों ने इन आरोपों को समर्थन किया है, परंतु अनेक राजनीतिक दलों ने इन आरोपों को मिथ्या बताया है।

संस्था द्वारा जारी फरवरी----1994 की रिपोर्ट में यह कहा गया कि पंजाब बिजली बोर्ड के कर्मचारी हरजीत सिंह को पुलिस द्वारा उठा लिया गया और बाद में वह लापता हो गया। पुलिस ने दावा किया कि हरजीत सिंह आतंकवादियों के द्वारा हमले में मारा गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने इस घटना के बारे में पंजाब सरकार से रिपोर्ट मांगी है।

एमनैस्टी इंटरनेशनल ने पंजाब और जम्मू-कश्मीर में बड़े पैमाने पर अवैध हिरासत व यातना की रिपोर्ट दी है। यह सुझाव भी दिया है कि स्वतंत्र संस्थाओं व न्यायाधीशों को हवालात चैक करने की इजाजत दी जाए।

**पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टी :** इसकी स्थापना 1976 में की गई थी। यह एक स्वैच्छिक संस्था है जो मानवाधिकार हनन की घटना की जांच टीम भेजकर करवाती है। पीड़ित, पुलिस व लोगों से टीम द्वारा बातचीत की जाती है और निष्कर्ष निकाला जाता है। 1984 के सिख-विरोधी दंगों के बारे में संस्था ने यह रिपोर्ट दी कि ये दंगे सुनियोजित थे और एक प्रमुख राजनीतिक दल के नेताओं ने इन्हें आयोजित कराया था।

पी.यू.सी.एल. (आंध्र प्रदेश) ने नक्सलवाद को दबाने के लिए चलाए गए पुलिस अभियान के दौरान मानवाधिकार हनन के आरोप लगाए हैं। 1994 में आंध्र प्रदेश में पुलिस हिरासत से 43 लोगों के लापता

होने व पुलिस द्वारा उनकी हत्या किए जाने की रिपोर्ट दी, जिसकी जांच राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा भी कराई गई।

**पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स :** यह भी एक स्वैच्छिक संस्था है जो मानवाधिकार हनन व लोगों के जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के मामले उठाती है। गोविंद मुखौटी, मनोरंजन मोहंती, नंदिता आदि इसके प्रवक्ता रहे हैं। इसका मुख्यालय दिल्ली में है।

‘अपराधी कौन है?’ नामक रिपोर्ट इस संस्था ने पी.यू.सी.एल. के साथ प्रकाशित की, जिसमें सिख विरोधी दंगों के बारे में दोषियों के नाम प्रकाशित किए गए।

आंध्र प्रदेश में जर्मीदारों व पुलिस द्वारा कमजोर वर्ग पर अत्याचार संबंधी रिपोर्ट इस संस्था द्वारा प्रकाशित की गई है।

बिहार में भूमिहीनों के प्रति जर्मीदारों के अत्याचार, माफिया और जनजाति के लोगों के अधिकारों के हनन पर रिपोर्ट दी है।

‘काले कानून व लोग’ नामक रिपोर्ट में पंजाब के लोगों के अधिकारों का हनन एवं सांप्रदायिक आतंकवाद के बारे में बताया गया है।

**सिटिजन्स फार डेमोक्रेसी :** 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा बी.एम. तारकुंडे की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई जिसने आंध्र प्रदेश में नरसंहार की रिपोर्ट दी। यही कमेटी बाद में सिटिजन्स फार डेमोक्रेसी के रूप में जानी गई है। पंजाब में सरकार द्वारा जनता पर किए जा रहे अत्याचारों के बारे में रिपोर्ट को ‘पंजाब में दमन’ के नाम से प्रकाशित किया गया। ‘ऑपरेशन ब्लूस्टार’ अनकही कहानी, नाम से इस घटना की अपने तरीके से रिपोर्ट दी गई। इस रिपोर्ट में सेना व अर्द्धसैनिक बलों की ज्यादतियों की कहानी बताई गई है।

**इंडियन पीपुल्स ह्यूमन राइट कमीशन :** इसकी स्थापना 1987 में की गई। यह एक लोक-न्यायाधिकार

जैसी संस्था है जिसके अध्यक्ष जस्टिस वी.आर.कृष्ण अय्यर हैं। यह कमीशन मानवाधिकार हनन के मुकदमों की सुनवाई में योगदान देता है।

**आल इंडिया फैडरेशन आफ आर्गनाइजेशन फार डेमोक्रेटिक राइट्स :** यह संस्था 1982 में स्थापित की गई। यह विभिन्न छोटे-छोटे क्षेत्रीय संगठनों का मिलाजुला मंच है। यह संस्था भी मानवाधिकार हनन के मामले उठाता है। इसके अतिरिक्त भी कई संगठन इस कार्य में संलग्न हैं। विश्व स्तर पर 'ह्यूमन राइट वॉच' नामक संस्था है। इसने 1993 की रिपोर्ट में अमेरिका में रंग-भेद, पुलिस-अत्याचार, भाषा-संबंधी भेदभाव व जेलों के दुराचरण की रिपोर्ट दी है। 'एशिया-वॉच' नामक संस्था एशियाई देशों में मानवाधिकार संबंधी घटनाओं को प्रचारित करती है। भारत में 'मध्य-प्रदेश सिविल लिबर्टीज यूनियन', 'आंध्रप्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी', पंजाब में 'ऐसोसियशन फॉर डेमोक्रेटिक राइट', 'ह्यूमैन राइट सोसाइटी' आदि अन्य संस्थाएं भी हैं, जो मानवाधिकार संबंधी मसलों को सुलझाती हैं।

1993 में दूसरी संयुक्त राष्ट्र विश्व-कांफ्रेंस के मौके पर वियना में गैर सरकारी संगठनों के मंच पर 'सभी मानवाधिकार सभी के लिए' का मंचन किया गया। करीब 1000 गैर-सरकारी संगठनों के 2000 प्रतिनिधि इस मंच पर इकट्ठे हुए। इस आयोजन के उद्देश्य थे---राजकीय कार्यक्रमों को प्रभावित करना, सभी गैर-सरकारी संगठनों का नेटवर्क तैयार करना तथा सभी संगठनों के विचारों का आदान-प्रदान करवाना। इस आयोजन ने कुछ कार्यक्रम बनाए जिनमें महिलाओं, बच्चों, विकलांगों आदि की स्थिति व आकलन व विकास का आयोजन आदि प्रमुख थे। इस मंच पर भारत के गैर सरकारी संगठनों में से कुछ ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की आलोचना की। ज्यादातर भारतीय संगठनों ने सिखों को संप्रभु दल बनाने का विरोध किया। कई, भारतीय गैर सरकारी संगठनों ने भारतीय सरकार की

उपेक्षा की आलोचना की।

अनेकानेक महिला संगठन भी देश भर में सक्रिय हैं। प्रमुख रूप से 'ऑल इंडिया वुमैन कांफ्रेंस', 'जनवादी महिला समिति', 'महिला दक्षता समिति', समग्र महिला अगाड़ी' इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

**आरोपों-प्रत्यारोपों का विवाद :** उपर्युक्त सभी संगठनों का रवैया पुलिस-संगठनों के प्रति आक्रोशपूर्ण रहता है। चाहे आतंकवाद से निपटने का मामला हो या आंध्र प्रदेश में नक्सलवाद से लड़ने का, चाहे बिहार में जमींदार बनाम भूमिहीनों का विवाद हो, इन संगठनों का आरोप रहता है कि पुलिस द्वारा कमजोर वर्ग और जनता का दमन किया जाता है। पंजाब और जम्मू-कश्मीर में पुलिस संगठनों पर हिरासत में हत्या, झूठी मुठभेड़ व औरतों पर बलात्कार के आरोप लगाए जाते हैं। महिला संगठनों द्वारा भी पुलिस पर अभियुक्तों से गिरफ्तार महिला-अत्याचार के मामलों को दबाने के आरोप लगाए जाते हैं। यह सत्य है कि अनेक आरोपों में सत्यता होती है और जांच के पश्चात् दोषी अधिकारियों के खिलाफ मुकदमे दर्ज होते हैं और उनको सजा भी मिलती है। दूसरी तरफ, अनेक मामलों में इन आरोपों को प्रायोजित बताया जाता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यकारी मंडल की बैठक 6 जुलाई, 1997 को प्रस्ताव पारित किया गया कि 'जब पंजाब में आतंकवादी मौत का खेल खेल रहे थे, तब मानवाधिकारी चुप थे (जनसत्ता, 7 जुलाई, 1997) मगर पुलिस व सुरक्षा बलों द्वारा कार्रवाही करने पर एक तरफ निंदा करना विदेशियों द्वारा प्रेरित भारत-विरोधी कार्रवाही का अंग है। 'नई दिल्ली में भारतीयता' नामक संगठन द्वारा आयोजित गोष्ठी 'आतंकवाद, सुरक्षा बल व मानवाधिकार' में बोलते हुए श्री के.पी.एस. गिल ने कहा है कि पंजाब में आतंकवादियों से जूझते सुरक्षाकर्मियों ने देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाया है। मानवाधिकारों की रक्षा के

नाम पर उनको हतोत्साहित किया जाना उचित नहीं है। कुछ लोग मानवाधिकारों के नाम पर सुरक्षा बलों का मनोबल गिराने का भी प्रयत्न करते हैं। यह देश को अस्थिर करने की साजिश की सजा है उसका एक हिस्सा है, इस तरह के विचार श्री करुण शौरी पत्रकार द्वारा किए गए हैं। (राजस्थान पत्रिका, 27 जून, 1997)।

श्री के.पी.एस. गिल द्वारा दिए गए एक इंटरव्यू में माया (30 जून, 1997) को उन्होंने बताया है कि 'ये मानवाधिकार संगठन एक राजनैतिक मुद्दा अख्तियार कर चुके हैं। ये संगठन एक उद्योग बन गए हैं। अगर किसी आदमी को एक लाख रुपये का मुआवजा मिलता है तो 70 हजार रुपये उसे अपने कथित मानवाधिकारवादी वकील को देने पड़ते हैं। इसी प्रकार का आरोप महिला संगठनों पर श्री प्रकाश कारत ने 'पीपल्स डेमोक्रेसी' 'अप्रैल-जून' में लगाया है। उन्होंने लिखा है कि 'ये महिला संगठन' सी.आई.ए. के एजेंट हैं और विदेशी धन प्राप्त करके काम करने वाली एजेंसियां हैं।

'दी हिंदुस्तान टाइम्स' में श्रीमती के.आर. लक्ष्मी ने लिखा है----'जब पंजाब और जम्मू-कश्मीर में सिख व हिंदू मारे जा रहे थे, औरतों से दुर्व्यवहार किया जा रहा था, तब कितने मानवाधिकार संगठनों ने आवाज बुलंद की थी?' ये संगठन प्रचार के भूखे हैं। पश्चिमी मानवाधिकार संगठन अपने राष्ट्रीय हितों व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ नहीं बोलते हैं। इन संगठनों में भी गैर-सरकारी संगठनों के तेवर ज्यादा तीखे पाए जाते हैं। ये स्वैच्छिक संगठन सरकार द्वारा स्थापित मानवाधिकार संस्थाओं के कार्यों की भी आलोचना करते हैं। 'जागृति महिला समिति' व 'इंडियन हाउस वाइफ फेडरेशन' ने आरोप लगाया है कि राष्ट्रीय महिला आयोग से जो अपेक्षा की गई थी, वह उन पर पूर्णतः खरी नहीं उतरती हैं। तमाम रिपोर्टें व सिफारिशें केवल कागजी

दस्तावेजों में ही सिमट कर रह गई हैं।

श्री ए.जी. नूरानी ने India's Report to U.N. on Human Rights-Economic & Political Weekly-May 29, 1993 में लिखा है कि 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सेना व अर्द्धसैनिक बलों के खिलाफ जांच करने की शक्ति नहीं है। उसे जेलों का दौरा करने से पूर्व राज्य-सरकारों की इजाजत लेनी पड़ती है। इसी प्रकार के आरोप अन्य गैर-सरकारी संगठनों ने सरकारी संगठनों की अक्षमता के बारे में भी लगाए हैं।

भारत के तत्कालीन गृहमंत्री श्री एस. बी. चव्हाण ने ऐमनेस्टी इंटरनेशनल के बारे में टिप्पणी की थी जो जिक्र करने लायक है----'ऐमनेस्टी इंटरनेशनल की यह प्रवृत्ति है कि भारत को वह ऐसे रंगना चाहती है मानो वहां कानून का शासन ही नहीं है।' इस प्रकार विदेशी मानवाधिकार संगठनों की रिपोर्ट ज्यादा विश्वसनीय नहीं मानने वाले लोग हैं। अमेरिकी सरकार प्रतिवर्ष एक रिपोर्ट 'ह्यूमैन राइट प्रेक्टिसेज' पर जारी करती है। इसमें 'फोरेन एसिस्टेंस एक्ट' के तहत अमेरिका से मदद पाने वाले देशों के बारे में मानवाधिकार संबंधी रिपोर्ट प्रकाशित होती है। कुछ भी हो, इस बात पर विचार करना जरूरी है कि इन मानवाधिकार संगठनों द्वारा पंजाब व कश्मीर के उग्रवादियों, उत्तर-पूर्व के सशस्त्र भूमिगत संगठनों व नक्सलवादियों के द्वारा किए गए हत्याकांड, अपहरण व विस्फोटों की आलोचना नहीं की जाती है। इन आतंकवादी संगठनों के गुप्त ठिकानों का पता लगाने में मानवाधिकार जांच एजेंसियों का प्रयोग नहीं किया जाता है। बल्कि पुलिस संगठनों द्वारा इनके खिलाफ कार्रवाही करते समय अंतर्राष्ट्रीय व देशी मानवाधिकार संगठन सक्रिय हो जाते हैं। अमेरिका व पश्चिमी शक्तियों की भारत जैसे उभरते देशों को कमजोर बनाए रखने की बहुआयामी नीतियां हैं और संभव है कि



ऐसा प्रचार भी इसी नीति के अंतर्गत किया जाता हो।

यह बताना नितांत आवश्यक है कि इन गैर-सरकारी मानवाधिकार संगठनों द्वारा पुलिस पर आरोप लगाने की प्रक्रिया पर गंभीरता से सोचने का समय आ गया है। पुलिस संगठनों को इन संगठनों के प्रतिनिधियों से सद्व्यवहार करके सही तथ्य उन्हें बताने चाहिए ताकि वे केवल तथाकथित पीड़ित पक्ष के बारे में न प्रकाशित करें। इसके अलावा पुलिसकर्मियों को भी मानवाधिकार के सिद्धांतों का सम्मान व रक्षा करनी सीखनी होगी व उनको अमली जामा भी पहनाना होगा ताकि निरंतर बढ़ते इस तरह के आरोपों की समाप्ति हो सके।

देशभर में सभी राज्यों की पुलिस के 585 कर्मी वर्ष 1994 में ड्यूटी के दौरान फर्ज निभाते हुए मारे गए हैं। 1993 में यह संख्या 617 व 1992 में 808 थी (Crime in India, 1994 के अनुसार) इसी प्रकार सीमा सुरक्षा बल के 1993 में 93, 1992 में 119 और 1991 में 77 कर्मी मारे गए हैं। (पुलिस-विज्ञान अक्तूबर-दिसंबर-1993) इतनी शहादत के बावजूद पुलिस संगठनों को श्रेय मिलने के स्थान पर आरोप ही सहन करने पड़ते हैं। यह अपने आप में एक दुखद व भयावह स्थिति है। हिरासत में होने वाली प्रत्येक मौत पर ये उक्त संगठन शोर मचाते हैं। इस बारे में गहराई से चिंतन करने की आवश्यकता है कि क्या हिरासत में प्रत्येक मौत पुलिस ज्यादाती की ही वजह से होती है, अन्य किसी कारणवश नहीं। कई बार किसी व्यक्ति को कुछ गलत कार्य करने की वजह से भीड़ द्वारा पीट दिया जाता है और फिर पुलिस के हवाले कर दिया जाता है। अनेक मामलों में बहुतायत में शराब व मादक द्रव्यों का इस्तेमाल करने से भी पुलिस को ऐसे पियक्कड़ों को गिरफ्तार करना पड़ता है। ऐसे मामलों में उस आदमी की हिरासत में मौत चोटों से या शराब के नशे में स्वयं पर नियंत्रण खो

देने से या बाहरी या आंतरिक चोटें लगने से भी हो सकती है। दूसरे, पुलिस हिरासत में कई मौतें वास्तव में ही प्राकृतिक मौत या अभियुक्त द्वारा की गई आत्महत्या भी हो सकती है। तीसरे, पुलिस द्वारा सारे भारत में प्रतिवर्ष 50.5 लाख मुकदमों की तफ्तीश की जाती है और वर्ष भर में कुल 20.2 लाख व्यक्ति गिरफ्तार किए जाते हैं। (Towards Better Police-Public Report, Hindustan Times May 17, 1994) यह तर्क भी दिया जा सकता है कि गिरफ्तारी की इतनी बड़ी संख्या के आगे हिरासत में मौतों की मामूली संख्या को बढ़ा चढ़ाकर नहीं सोचा जाना चाहिए। 1990 में सारे भारत में हिरासत में 69 की मौत हुई। 1991 में 59, 1992 में 69, 1993 में 68 मौतें हुई। (Towards Better Police-Public Report, Hindustan Times May 17, 1994) वर्ष 1994 में कुल 55 लाख संज्ञेय अपराधों की तफ्तीश की गई थी। (Crime in India-1994) इस प्रकार हिरासत में मौतों के लिए सभी पुलिस-संगठनों की आलोचना करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

बेहतर यह होगा कि मानवाधिकार संगठन और पुलिस संगठन मिलकर समाज व कानून की भलाई के लिए एकजुट होकर कार्य करें। पुलिस अपने स्तर पर संबंध सुधारने के लिए क्या कर सकती है, यह विचारणीय है। मानवाधिकार संगठनों को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि बिना जांच-पड़ताल किए पुलिस-संगठनों पर आरोप न लगाएं और अपनी शक्ति केवल पुलिस कर्मियों की कमियां, खामियां निकालने की बजाए, कानून-व्यवस्था लागू करने में पुलिस की मदद में लगाएं। तभी दोनों के संबंध मधुर हो सकते हैं।

मानवाधिकार संस्कृति का निर्माण करने हेतु इस धारणा का प्रसार-प्रचार भी नितांत आवश्यक है। आयोग ने सभी राज्यों में पुलिस व संबद्ध कैडर के कर्मियों को मानवाधिकार संबंधी प्रशिक्षण देने की भी योजना

बनाई है। कई शिक्षा संस्थानों में तो मानवाधिकार पाठ्यक्रम भी लागू कर दिया जाता है। प्रतिवर्ष 10 दिसंबर को 'मानवाधिकार दिवस' मनाया जाता है। समाज के प्रत्येक वर्ग को चाहे, वह पुलिसकर्मी हो या अन्य लोकसेवक, व्यापारी हो या पत्रकार, शिक्षित अथवा अशिक्षित, मानवाधिकारों के सम्मान के प्रति प्रतिबद्ध रहना होगा। मानव की गरिमा को ही परम लक्ष्य मानकर उनकी रक्षा हेतु प्रयास करना होगा। पुलिसकर्मियों के लिए नई सदी में नई चुनौतियां सामने आएंगी। अपराधों को नियंत्रित करने और विध्वंसक शक्तियों का दमन करने की प्रक्रिया में अपराधी के मानवाधिकारों की रक्षा करना निश्चय ही एक कठिन कार्य है। इस चुनौती का उन्हें मजबूत संकल्प शक्ति के साथ मुकाबला करना होगा।

कोई भी सभ्य समाज एक सभ्य पुलिस संगठन चाहता है। सरकार के अन्य अंगों की बजाए पुलिस संगठन को जनता का विश्वास जीतने की सर्वाधिक आवश्यकता होती है क्योंकि अपराधों की सूचना, अपराधियों का पता लगाने, अपराध संबंधी गवाही आदि

के लिए जनता का सहयोग आवश्यक है। पुलिस-दर्शन के प्रवक्ता श्री वी.एन. मलिक का कहना है कि 'जनता का विश्वास ही वह नींव है जिस पर सारा पुलिस कार्य टिका हुआ है।' (B.N. Mullik—"A Philosophy for the Police P-100)

सच तो यह है कि पुलिस को जनता के मानवाधिकार के हनन से बचना तो है ही, एक कदम आगे बढ़कर जनता के मानवाधिकारों की रक्षा हेतु तत्पर भी रहना है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था 'पुलिस कर्मी सही और गलत के चौराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसका दायित्व सही की रक्षा करना और गलत को पकड़ना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह एक संरक्षक, मार्गदर्शक, सामाजिक कार्यकर्ता व अधिकार का प्रतीक है।'

निष्कर्षतः यह कहना गलत न होगा कि पुलिस संगठन महज कानून-व्यवस्था को लागू करने वाली मशीनी व्यवस्था के पुर्जे मात्र नहीं हैं, बल्कि वे स्वयं, भी मानव पहले है और पुलिसकर्मी बाद में।



## कारागार सुधार एवं सुधारात्मक प्रशासन पर राष्ट्रीय नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही हमारे देश में कारागार (जेल) प्रबंधन पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। भारत सरकार, गृह मंत्रालय ने इस संबंध में सर्वप्रथम वर्ष 1972 में कारागारों पर एक कार्य-समिति का गठन किया जिसने कारागारों के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण कर निम्नांकित विशिष्ट मुद्दों पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने पर बल देने की आवश्यकता को महसूस किया था---

1. कारागार के विकल्पों को दंडनीति में सम्मिलित करके उनका प्रभावी उपयोग करना।
2. कारागार कर्मियों के उपयुक्त प्रशिक्षण तथा उनकी सेवा अनुबंधों में सुधार के लिए यथोचित दिशा निर्देश तय करना।
3. बंदी अपराधियों से वैज्ञानिक ढंग से निपटने एवं उनके उपयुक्त वर्गीकरण के लिए ऐसे नियमों को बनाना जिससे कारावास अवधि के दौरान उनकी देखभाल ठीक प्रकार से हो सके।
4. कारागार प्रशासन को राष्ट्रीय विकास नीति एवं राष्ट्रीय योजना प्रक्रिया के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा के एक अभिन्न अंग की हैसियत प्रदान करना।
5. कारागार प्रशासन के विकास की आवश्यकता को युक्तियुक्त वरीयता प्रदान करना।
6. कारागार विकास के कुछ प्रमुख पहलुओं को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करना।

वर्ष 1980 से 83 की अवधि के दौरान न्यायधीश श्री ए. एन मुल्ला के अध्यक्षता में गठित एवं कार्यरत एक अखिल भारतीय जेल सुधार समिति ने भी जेल सुधार व अपराधियों के सजा पूरी करने पर समाज में उनके पुनर्वास के लिए कारागार पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। इस समिति ने कारागार और इससे संबंधित संस्थानों को संविधान के अनुच्छेद 7 की समवर्ती सूची में शामिल करने के लिए भी संविधान में आवश्यक संशोधन की अनुशंसा की है ताकि राज्य कारागार मैनुअलों (सहिताओं) की समीक्षा के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा इसके लिए उपयुक्त नियम बनाए जा सके।

भारत सरकार गृह मंत्रालय ने अपने संकल्प दिनांक 16 नवंबर 1995 के अंतर्गत पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो में कारागार/सुधारात्मक प्रशासन विभाग की स्थापना की। इसके फलस्वरूप कारागार प्रबंधन को सुचारु बनाने के लिए अनेक प्रयासों को संस्थागत रूप प्रदान किया गया। जिसमें कारागार प्रबंधन के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान किए गए साथ ही जेल कर्मियों के प्रशिक्षण, पाठ्यक्रमों एवं प्रशिक्षण सामग्री के निर्माण के साथ कई दिशा निर्देशक सरल पुस्तिकाएं एवं आदर्श कारागार नियम पुस्तिकाओं को तैयार कर इनका वितरण सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में किया गया। विभिन्न स्तरीय जेल कर्मियों

को जेल के विभिन्न भागों में प्रचलित जेल प्रबंधन संबंधी प्रभावशाली कार्यप्रणाली की जानकारी के लिए राष्ट्रीय/क्षेत्रीय एवं राजस्वीय स्तर पर उपयुक्त मंच भी समय-समय पर प्रदान किए गए।

वर्ष 1983 में गठित इस अखिल भारतीय जेल सुधार समिति की अनुसंधानों पर गृह मंत्रालय ने दिसंबर 2005 में जेल सुधार व सुधारात्मक प्रशासन पर महानिदेशक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय नीति का प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी जिसमें निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना अपेक्षित था।

1. कारागारों से संबंधित विद्यमान विधायी स्थिति की समीक्षा करके आवश्यक हुआ तो संसाधनों हेतु सुझाव देना।
2. जेल सुधार के लिए समय-समय पर गठित विभिन्न समितियों द्वारा की सिफारिशों की समीक्षा कर ऐसी ठोस अनुसंधानों को चिन्हित करना जिनको केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा कार्यान्वयन किया जाना है।
3. जेल प्रशासन ने निम्नलिखित पहलुओं के संदर्भ में इन समितियों द्वारा की गई अनुसंधानों के कार्यान्वयन स्तर की समीक्षा करना---

(क) कैदियों की शारीरिक स्थिति

1. अधिक संख्या तथा भीड़भाड़
2. स्वच्छ वातावरण
3. अन्य आधारभूत आवश्यकताएं

(ख) कैदियों की स्थिति

1. परीक्षणधीन
2. दोषी ठहराना
3. कैदी

(ग) सुधारात्मक प्रशासन

1. परीक्षणधीन/दोषियों के लिए कल्याण कार्यक्रम

2. छूटने के बाद पुनर्वास

3. समाज में शामिल होना

(घ) कारागार कर्मी

1. कारागार कर्मियों का पूर्ण रूप से विकास
2. प्रशिक्षण

(ड.) कैदियों तथा सुधारात्मक प्रशासन के आधुनिकीकरण से संबंधित अन्य किसी भी प्रकार के मुद्दे।

4. दंड के विकल्पों से संबंधित सुझाव

इन मुद्दों पर देश के विभिन्न भागों में अनेक मंचों पर विस्तृत विचार विमर्श हुआ जिसमें आपराधिक न्याय प्रणाली व विशेषकर सुधारात्मक प्रशासन से संबंधित गैर सरकारी संगठनों के पक्षधारियों ने भी भाग लिया। इन सभी के बहुमूल्य सुझावों व विचारों का संकलन करके एक अंतरिम प्रतिवेदन तैयार किया गया। इस प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रीय नीति का प्रारूप तैयार करने के लिए इस समिति ने एक कोर समिति गठित की जिसने विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त विचारों एवं सामग्री का विश्लेषण करके राष्ट्रीय नीति का प्रारूप तैयार किया। इस कार्य को मूर्ति रूप देने के लिए पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के निदेशक (अनु.एवं वि.) श्री रमेश चंद्र अरोड़ा तथा सहायक निदेशक (जे.प्र.) डा. बन्नी विशाल त्रिवेदी तथा ब्यूरो के कारागार/सुधार प्रशासन विभाग में कार्यरत अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उच्च कोटि की निष्ठा एवं समर्पण से इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नीति प्रलेख को तैयार करने में अति महत्वपूर्ण योगदान किया है।

इस प्रलेख से यह अवधारणा सामने आई है कि हमारे कारागार व सुधारात्मक प्रशासन में न केवल उत्तरोत्तर सुधार लाने की गुंजाइश है बल्कि इस प्रक्रिया को इसमें निहित भावना के अनुरूप अपनाने

से जेलों के प्रशासन हेतु हमारे देश में जेल सुधार के प्रयासों को चिरकालीन से वांछित एक नई दिशा प्राप्त हो सकती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस प्रारूप राष्ट्रीय नीति के फलस्वरूप हमारे समाज में जेल

प्रशासन के प्रति जागरूकता आने के साथ इनके क्रियान्वयन को मूर्त रूप देने में भी महती सहमति प्राप्त होगी।



## पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	भारतीय पुलिस का इतिहास (अतीत काल से मुगल काल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका	श्री हरीश नवल	—
8.	सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्भव	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	महिला और पुलिस	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	मानवाधिकार और पुलिस	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	नई आर्थिक नीति एवं अपराध	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	बाल अपराध	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां	डा. शरद सिंह	200/-
16.	मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	सामुदायिक पुलिस व्यवस्था	डा. तपन चक्रवर्ती डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	संगठित अपराध	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	पुलिस कार्यों का निजीकरण	डा. शंकर सरौलिया	330/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054  
से प्राप्त की जा सकती हैं।

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :---

संपादक

पुलिस विज्ञान

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

ब्लाक-11, चौथी मंजिल

सी.जी.ओ. कम्प्लैक्स, लोदी रोड

नई दिल्ली-110003

फोन : 24360371 एक्स. 253

वेब साइट — डब्लू डब्लू डब्लू.बीपीआरडी.जीओवी.इन

डब्लू डब्लू डब्लू. बीपीआरडी.एनआईसी.इन

# पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)

अक्तूबर-दिसम्बर, 2007

---

डा. किरन बेदी

रमेशचंद्र अरोड़ा

संजय बेनिवाल

उपनिदेशक

डा. बट्टी विशाल त्रिवेदी

सहायक निदेशक

संपादक : दिवाकर शर्मा

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

11, 3 4

110003



वर्ष - 25

अंक 101

अक्तूबर-दिसम्बर, 2007

वर्ष - 25

अंक 101

अक्तूबर-दिसम्बर, 2007